अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-11, 16-31 जनवरी, 2017

30 जनवरी : निर्वाण दिवस

विनम्र श्रद्धांजलि व नमन्

''मैं शरीर से तुम्हारे बीच सदा नहीं रहूंगा, परंतु जिनके हृदय में वह श्रद्धा और उत्कंठा होगी, उन सबके निकट मैं सदैव रहूंगा। यह प्रेरणा प्रत्येक की श्रद्धा और साधना के अनुसार होगी।'' –गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 11, 16-31 जनवरी, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह   भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. गांधी की हत्या से सबक... 2
2. भ्रष्ट राज्यतंत्र की भक्ति पाप, द्रोह... 3
3. बापू की शहादत... 4
4. यह मौन तोड़ना होगा... 9
5. वन मैन बाऊंड्री फोर्स... 11
6. प्रपंच के सहारे हत्यारे का महिमामंडन... 14
7. गांधी समाधि पर नंगे पांव... 16
8. ट्रस्टीशिप यानी भरत राज्य... 17
9. दोराहे पर खड़ा भारतीय समाज... 19
10. कविता : ऐसा मनुष्य कभी मरता नहीं... 20
11. इतिहास गवाह है... 20

संपादकीय

गांधी की हत्या से सबक

गांधी की हत्या होने पर किन शक्तियों ने खुशी मनायी थी। आज भी वे कौन-सी ताकतें हैं, जो गांधी की हत्या को सही मानती हैं और उसे महिमामंडित करती हैं। इन बातों को गहराई से समझना होगा।

गांधीजी की हत्या के प्रयास आजादी मिलने के पहले भी कई बार किये गये थे। वे प्रयास जिन कारणों से किये गये थे, वही कारण 30 जनवरी, 1948 को भी उनकी हत्या का कारण था।

गांधीजी हिन्दू व मुसलमानों को अलग राष्ट्र नहीं मानते थे। जबकि, उनकी हत्या में प्रयासरत शक्तियां हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग राष्ट्र के रूप में स्थापित करने में पूरी शक्ति लगाये हुई थी।

गांधीजी पूंजीवाद के तथा पूंजीवादी साम्राज्यवाद के घोर विरोधी थे (पूंजीवादी साम्राज्यवाद का नया अवतार पूंजी का वैश्वीकरण है)। जबकि उनकी हत्या का समर्थन करने वाली व प्रयास करने वाली शक्तियां अंग्रेजी शासकों की पक्षधर थीं, पूंजीवाद की समर्थक थीं तथा पूंजीवादी साम्राज्यवाद की समर्थक थीं। इसी कारण गांधीजी की हत्या को जो महिमामंडित करते हैं, वे आज भी पूंजीवाद के तथा पूंजी के वैश्वीकरण के प्रबल समर्थक हैं।

भारत एक राष्ट्र नहीं है, यह सिद्धान्त शासक अंग्रेजों ने गढ़ा था। धार्मिक, क्षेत्रीय एवं भाषायी पहचानों को उन्होंने राष्ट्रीयता के नियामक तत्त्व के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया था। तत्कालीन भारत के बहुत-से समूहों ने इसी आधार पर अपनी अलग राष्ट्रीयता का दावा करना शुरू कर दिया था। अंग्रेजों ने कई समूहों की इस भावना को हवा देने की नीति अपना रखी थी। किन्तु सबसे ज्यादा प्रचार व समर्थन हिन्दू व मुस्लिम राष्ट्रीयता का किया था।

ये अकारण नहीं है कि हिन्दू राष्ट्र की बात करने वाले एवं मुस्लिम राष्ट्र की बात करने वाले—दोनों ही भारत में चल रही आजादी की लड़ाइयों के सभी धाराओं के विरोधी थे। वे न केवल गांधी विरोधी थे, बल्कि भगत सिंह व सुभाषचन्द्र बोस के भी विरोधी थे। इसी कारण इन संगठनों ने कभी भी भगत सिंह के संगठन या सुभाषचन्द्र बोस के संगठन में जाने के लिए भारतीय जनता का आह्वान नहीं किया।

अंग्रेजी शासन के खिलाफ मुसलमानों को भी जोड़ने की मुहिम में असहयोग आंदोलन के साथ खिलाफत आंदोलन को जोड़ने की रणनीति से देशभर में एक व्यापक एकता का माहौल 1921 में बना था। इसे तोड़ने के लिए देशभर में दंगे खड़े किये गये। एक ओर मुसलमान दंगाइयों को भड़काया गया तथा दूसरी ओर हिन्दुओं की ओर से दंगा करने के लिए एवं मुसलमानों से सशस्त्र मुकाबले के लिए एक नया संगठन 1925 में बनाया गया।

1916 के अपने प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन में हिन्दू महासभा ने प्रस्ताव पास कर अंग्रेजी शासन के प्रति निष्ठा व्यक्त की थी, किन्तु भारतीय जनता का मूड देखकर सन् 1921 में इस अनुच्छेद को अपने प्रस्ताव से हटा दिया था।

सन् 1939 में, कांग्रेस के मंत्रिमंडलों ने स्तीफा दे दिया था क्योंकि अंग्रेजी शासक बिना भारतीयों की सहमति के भारत को द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंक देना चाहते थे। तब हिन्दू महासभा ने मुस्लिम लीग के साथ मिलकर कई राज्यों में सरकार बनायी थी। हिन्दू महासभा एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन का विरोध किया था तथा इस आंदोलन को दबाने में अंग्रेजी शासकों की मदद की थी। इस संदर्भ में पत्र भी लिखा था।

जब सिंध प्रांत के एसेम्बली ने अलग पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पास किया था, तब भी हिन्दू महासभा वहां की सरकार में भागीदार थी। हिन्दू महासभा के मंत्रियों ने इसपर भी मंत्रिमंडल से स्तीफा नहीं दिया था।

गांधी की हत्या के पीछे इन्हीं शक्तियों का हाथ था। देश के अंदर नफरत की राजनीति को अधिकतम स्तर तक बढ़ाना तथा पूंजीवादी ताकतों का समर्थन करना। गांधी की हत्या से हम कोई सबक सीख सकते हैं तो वह यही कि नफरत की राजनीति को बेनकाब करें और शिकस्त दें तथा दूसरे पूंजी के वैश्वीकरण एवं वैश्विक पूंजीवादी बाजार द्वारा भारत के संसाधनों व श्रम के शोषण का पुरजोर विरोध करें। जल-जंगल-जमीन-खनिज को भारत की सम्प्रभुता का प्रतीक बनाकर उनके पूंजीवादी शोषण व दोहन के विरुद्ध सत्याग्रह करें।

बिमल कुमार

सिविल नाफरमानी

भ्रष्ट राज्यतंत्र की भक्ति पाप, द्रोह सद्गुण

❑ मो. क. गांधी

सक्रिय निष्ठा और सक्रिय द्रोह के मध्य कोई बीच का रास्ता नहीं हुआ करता है। 'यदि किसी व्यक्ति को खुद को मनमुटाव का दोषी न होना साबित करना है तो उसे अपने को सक्रिय रूप से स्नेही साबित करना होगा।' मरहूम न्यायमूर्ति स्टीफन की इस टिप्पणी में काफी सच्चाई है। लोकतंत्र के इस जमाने में किसी व्यक्ति के प्रति निष्ठा का प्रश्न नहीं उठता। इसके बजाए अब आप संस्थाओं के प्रति निष्ठावान या द्रोही होते हैं। इस प्रकार जब आप आज के जमाने में द्रोह करते हैं तब किसी व्यक्ति का नहीं संस्था का नाश चाह रहे होते हैं।

जो मौजूदा राज्य-व्यवस्था को समझ सके हैं वह जानते हैं कि यह कत्तई निष्ठा उत्पन्न करने वाली संस्था नहीं है। वह भ्रष्ट है। लोगों के व्यवहार को निर्धारित करने के लिए उसके द्वारा बनाए गए कई कानून निश्चित तौर पर अमानवीय हैं, राज्य व्यवस्था के प्रशासन की स्थिति बदतर है। अक्सर एक व्यक्ति की इच्छा कानून बन जाया करती है। यह आराम से कहा जा सकता है कि *हमारे देश में जितने जिले हैं उतने शासक हैं। ये शासक कलेक्टर कहे जाते हैं तथा इन्हें कार्यपालिका और न्यायिक कार्य करने के अधिकार एक साथ मिले हुए हैं। यूं तो यह माना जाता है कि इनके कार्य कानूनों से संचालित होते हैं जो अपने आप में अत्यधिक दोषपूर्ण होते हैं। अक्सर ये शासक स्वेच्छाचारी होते हैं तथा अपनी सनक के अलावा इन पर किसी का नियंत्रण नहीं होता। अपने परदेशी आकाओं अथवा मालिकों के सिवा वे किसी के हित का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इन करीब तीन सौ लोगों ने लगभग गुप्त-सा एक संघ बना लिया है जो दुनिया में सबसे ताकतवर है।* यह अपेक्षा की जाती है कि एक न्यूनतम राजस्व वे हासिल करें, इसीलिए जनता से व्यवहार में अक्सर वे अनैतिक हो जाते हैं। सरकार की यह व्यवस्था ऐलानिया असंख्य भारतवासियों के निर्दय शोषण पर आधारित है। *गांवों के मुखिया से लगायत इन क्षत्रपों के निजी सहायकों तक इन्होंने मातहतों का एक वर्ग तैयार कर रखा है, जो अपने विदेशी मालिकों के समक्ष घिघियाता है जबकि जनता के प्रति उनका रोजमर्रा का व्यवहार इतना गैर जिम्मेदाराना और कठोर होता है कि उनका मनोबल गिर जाए तथा एक आतंकी व्यवस्था द्वारा जनता भ्रष्टाचार का प्रतिकार करने के काबिल न रह जाए। भारत सरकार की इस भयानक बुराई की जिन्होंने शिनाख्त कर ली है उनका यह दायित्व है कि वे इसके प्रति द्रोह करने का जोर-शोर से प्रचार करें। ऐसे भ्रष्ट राज्यतंत्र के प्रति भक्ति प्रकट करना एक पाप है, द्रोह एक सद्गुण है।*

इन तीन सौ लोगों के आतंक के साये में संत्रस्त तीस करोड़ लोगों का तमाशा निरंकुश शासकों तथा उनके शिकार दोनों के प्रति समान तौर पर मनोबल गिराने वाली बात है। *इस व्यवस्था की बुराई को जो समझ चुके हैं उन्हें इसे बिना देर नष्ट करने में लग जाना चाहिए भले ही बिना संदर्भ देखने पर इसकी कुछ विशिष्टताएं आकर्षक प्रतीत हों।* ऐसे लोगों का यह स्पष्ट दायित्व है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे हर जोखिम उठायें।

परंतु यह भी साथ-साथ स्पष्ट रहे कि इस व्यवस्था के इन तीन सौ संचालकों और प्रशासकों को नष्ट करने की मंशा यदि यह तीस करोड़ लोग पाल लेते हैं तो वह कायरता होगी। इन प्रशासकों तथा उनके भाड़े के टट्टुओं को खत्म करने की युक्ति निकालना घोर अज्ञान का द्योतक होगा। इसके अलावा यह भी जान लेना चाहिए कि प्रशासकों का यह तबका परिस्थितिजन्य कठपुतलियां हैं। इस व्यवस्था में प्रवेश करने वाला सर्वाधिक निष्कलुष व्यक्ति भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता तथा इस बुराई के दुष्प्रचार का औजार बन जाता है। इसलिए स्वभावतः इस व्याधि का इलाज प्रशासकों के प्रति क्रुद्ध होकर उन्हें चोट पहुंचाकर नहीं होगा अपितु व्यवस्था से समस्त-संभव ऐच्छिक सहयोग वापस लेकर एवं कथित लाभ लेने से इनकार द्वारा अहिंसक नाफरमानी असहयोग का अनिवार्य हिस्सा है। *आदेशों और फरमानों का पालन कर हम किसी भी प्रशासन का सर्वाधिक कारगर ढंग से सहयोग करते हैं। कोई भी अनिष्टकर प्रशासन ऐसी साझेदारी का कत्तई पात्र नहीं होतां इससे वफादारी का मतलब पाप का भागी होना होता है। इसीलिए हर अच्छा व्यक्ति ऐसी बुरी व्यवस्था या प्रशासन का अपनी पूरी आत्मा से प्रतिकार करेगा। किसी बुरे राज्य द्वारा बनाये गये कानूनों की नाफरमानी इसलिए दायित्व बन जाता है। हिंसक नाफरमानी का साबका उन लोगों से होता है, जिनका स्थान अन्य कोई ले सकता है। हिंसक नाफरमानी द्वारा पाप अछूता रह जाता है तथा अक्सर उसे बल मिलता है। जो खुद को इस बुराई से जुदा रखना चाहते हैं उनके लिए अहिंसक यानी सिविल नाफरमानी एकमात्र तथा सबसे कारगर इलाज है तथा यह करना उनका फर्ज है।*

बतौर इलाज सिविल नाफरमानी अब तक आंशिक तौर पर आजमाया हुआ उपाय ही है, यह ही इसका खतरा भी है चूंकि हिंसाग्रस्त वातावरण में ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। जब अबाध तानाशाही फैली हुई होती है तब उससे पीड़ित जनता में क्रोध पैदा होता है। पीड़ितों की कमजोरी के कारण यह क्रोध अव्यक्त रहता है किन्तु मामूली बहाने से ही इसका विस्फोट पूर्ण उन्माद के साथ होता है। *सिविल नाफरमानी इस गैर-अनुशासित, जीवन-रक्षक ऊर्जा में रूपांतरित करने का राम-बाण उपाय है। सफलता के वादे के कारण इस प्रक्रिया में निहित जोखिम उठाना कुछ भी नुकसानदेह नहीं है। उड्डयन के विज्ञान का विकास एक ऊंचा स्तर हासिल कर चुकने के बावजूद जब दुनिया सिविल नाफरमानी के इस्तेमाल की आदी हो जायेगी तथा जब इसके सफल प्रयोगों की श्रृंखला बन चुकी होगी तब इसमें उड्डयन से भी कम जोखिम रह जायेगा।* *(यंग इंडिया, 27-3-1930, पृ. 108)*

हे राम!

बापू की शहादत

❑ प्यारेलाल

''मेरे चले जाने के बाद कोई भी एक व्यक्ति मेरा पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। परंतु मेरा थोड़ा-थोड़ा अंश तुममें से अनेकों में रहेगा। यदि तुममें से प्रत्येक व्यक्ति ध्येय को प्रथम और स्वयं को अंतिम स्थान देगा, तो मेरे रिक्त स्थान की बहुत-कुछ पूर्ति हो जायेगी।'' –गांधी

हां, तो सरदार के साथ गांधीजी की बातचीत होती रही। साढ़े चार बजे आभा गांधीजी का शाम का खाना लायी। वह लगभग सुबह के जैसा ही था।

प्रार्थना का समय निकट आ रहा था। परंतु सरदार की बातें अभी तक समाप्त नहीं हुई थीं। बेचारी आभा घबरा रही थी, क्योंकि वह जानती थी कि गांधीजी समय की पाबंदी को कितना महत्त्व देते हैं—खास तौर पर प्रार्थना के समय के बारे में। परंतु बीच में बोलने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। अंत में उससे रहा नहीं गया और उसने गांधीजी की घड़ी उठाकर उनका ध्यान खींचने के लिए उनके सामने रख दी। परंतु इससे भी कुछ न हुआ। उसकी परेशानी को देखकर सरदार की पुत्री ने कुशलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। गांधीजी ने प्रार्थना-भूमि पर जाने की तैयारी करने के लिए उठते हुए सरदार से कहा : ''अब मुझे तेजी से भाग जाना होगा।'' रास्ते में उनकी एक सेविका ने उन्हें बताया कि काठियावाड़ के दो कार्यकर्ता मुलाकात का समय मांग रहे हैं। गांधीजी ने जवाब दिया : *''उनसे कह दो कि प्रार्थना के बाद आ जायं। मैं जीवित रहा तो उस समय उनसे मिलूंगा।''*

फिर वे प्रार्थना-भूमि की दिशा में चले। उनके दोनों हाथ आभा और मनु के कंधा पर थे और वे उनके साथ हंसते और विनोद करते आगे बढ़ रहे थे। आभा ने तीसरे पहर उन्हें कच्ची गाजर पीसकर खिलायी थी। उसका जिक्र करते हुए उन्होंने उसे उलाहना दिया : ''तो मुझे तू पशुओं का आहार खिला रही है!''

आभा ने उत्तर दिया : ''बा (कस्तूरबा गांधी) इसे घोड़ों की खुराक कहती थीं!''

गांधीजी ने जोड़ा : ''यह कितनी बड़ी बात है कि जिसे कोई छूना भी नहीं चाहेगा, उसी को मैं स्वाद लेकर खाता हूं!''

आभा ने विनोद किया : ''बापू, आपकी घड़ी उपेक्षित अनुभव कर रही होगी। आप तो उसकी ओर देखते भी नहीं।''

उन्होंने व्यंग्य किया : ''क्यों देखूं, जब तुम लोग मेरे समय की रक्षक हो?''

आभा ने कहा : ''लेकिन आप तो समय-रक्षकों की तरफ भी नहीं देखते?'' गांधीजी हंस दिये।

यहां बातचीत एकाएक बंद हो गयी, क्योंकि गांधीजी और उनकी 'बैसाखियों' के बीच यह मौन समझौता था कि ज्यों ही वे प्रार्थना-भूमि में प्रवेश करें, सारे मजाक और बातचीत बंद हो जानी चाहिए—प्रार्थना के सिवा और कोई विचार मन में नहीं रहने चाहिए।

भीड़ ने हटकर गांधीजी के जाने और मंच तक पहुंचने के लिए रास्ता दे दिया। जब गांधीजी ने भीड़ के अभिवादन का उत्तर देने के लिए दोनों लड़कियों के कंधों पर से अपने हाथ हटाये, उसी समय कोई आदमी दाहिनी ओर से भीड़ को चीरता हुआ आगे आया। मनु ने उसका हाथ पकड़ कर उसे रोकना चाहा, परंतु उसने मनु को जोर से झटक दिया और प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़कर गांधीजी के सामने झुकते हुए अपने साथ कारतूस वाले पिस्तौल से एक के बाद एक तीन गोलियां चलायीं। उसने वार इतने निकट से किया था कि चलायी हुई गोलियों में से एक बाद में गांधीजी के कपड़ों की तहों में पायी गयी। पहली गोली पेट में दायीं तरफ नाभि से ढाई इंच ऊपर और मध्यरेखा की दाहिनी ओर साढ़े तीन इंच पर लगी। दूसरी गोली मध्यरेखा से एक इंच दायीं ओर सातवीं पसली के नीचे लगी और तीसरी गोली स्तनाग्र से एक इंच ऊपर और मध्यरेखा से चार इंच दूर वक्ष की बायीं ओर लगी। पहली और दूसरी गोलियां पीठ को पार करके बाहर निकल गयीं। तीसरी फेफड़े में जाकर बैठ गयी। पहली गोली लगने पर गांधीजी का जो पैर उठ रहा था वह नीचे हो गया। दूसरी और तीसरी गोलियां चलीं तब तक गांधीजी पैरों पर खड़े ही थे। इसके बाद वे जमीन पर लुढ़क गये। उनके मुंह से निकले अंतिम शब्द थे—''राम! राम!''

गांधीजी का चेहरा राख जैसा भूरा हो गया। सफेद कपड़ों पर लाल धब्बा फैलता हुआ नजर आया। जो हाथ सभा को नमस्कार करने के लिए उठे थे वे धीरे-धीरे नीचे आ गये और एक बांह आभा के कंधे के स्वाभाविक स्थान पर गिरी। ढीला और कमजोर शरीर धीरे-धीरे लुढ़क गया।तभी हक्कीबक्की बनी हुई लड़कियों को पता चला कि क्या हो गया है।

शहर से लौटते मैं अपने मकान से पांच बरस की अपनी भतीजी को साथ ले आया था। वह गांधीजी की लाड़ली थी और उस दिन शाम को मेरे साथ बिड़ला-भवन आने का हठ कर रही थी। जब हम बिड़ला-भवन पहुंचे तो कोई सरदार पटेल की गाड़ी मंगवाने की बात कह रहा था। इसका मतलब मैंने यह लगाया कि गांधीजी प्रार्थना-सभा में जाने के लिए अपनी जगह से उठ गये होंगे और हमें जल्दी करना चाहिए। मैंने बच्ची से जूते उतार

कर मेरे पीछे-पीछे चले आने को कहा और मैं सीधा प्रार्थना-भूमि की ओर बढ़ा। मैं प्रार्थना-भूमि के मार्ग के खंभों की कतार तक पहुंचा ही था कि गांधीजी के एक सहायक *बी. पी. चंदवानी* सामने की तरफ से दौड़े-दौड़े आये। वे चिल्लाये : ''फौरन डॉक्टर को फोन कीजिये। बापू गोली से मार दिये गये हैं!''

मैं तो दुःस्वप्न की अवस्था में पत्थर की मूर्ति बनकर खड़ा रह गया। अगर बापू 'गोली से मार दिये गये,' तो फिर टेलीफोन किसलिए किया जाय? मैंने यंत्र की तरह किसी से डॉक्टर को फोन करने के लिए कह दिया।

सभी स्तब्ध हो गये। मेरी बहन की सहेली, लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज की स्नातिका ने, जो गांधीजी के पीछे-पीछे आयी थी, उनका सिर हलके-से अपनी गोद में रख लिया। उस समय गांधीजी का शरीर उसके सामने फैला कांप रहा था और आंखें आधी बंद थीं। हत्यारे नाथूराम गोडसे को बिड़ला-भवन के माली रघु ने पकड़ लिया था और थोड़ी-सी गुत्थम-गुत्था के बाद दूसरों की सहायता से काबू में कर लिया था।

निश्चल, शिथिल शरीर को मित्र लोग अंदर ले गये। धीरे से उन्होंने उसे उस गद्दी पर लिटा दिया, जिस पर बैठकर गांधीजी काम किया करते थे। परंतु कुछ भी किया जा सके, उससे पहले उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। उन्हें अंदर लाने के बाद एक चम्मच शहद और गरम पानी मुंह में डाला गया, पर वह भीतर उतरा नहीं। मृत्यु तत्काल हुई दीखती थी। दूसरे दिन शव की जांच से पता चला : ''मृत्यु...आघात और पिस्तौल से चलायी गयी गोलियों के...घावों के...कारण हुए भीतरी रक्तस्राव से हुई थी।''

मेरी बहन सुशीला अभी तक बहावलपुर से लौटी नहीं थी। डॉ. बी. पी. भार्गव गांधीजी के शव को भीतर लाने के बाद जल्दी-जल्दी *'एड्रेनेलिन'* खोज रहे थे। मैंने उनसे कहा : *कष्ट न कीजिये। गांधीजी ने हमसे कह दिया था कि उनके प्राण बचाने के लिए भी निषिद्ध औषधियां उनके शरीर में न पहुंचायी जायं। जैसे-जैसे आयु बीतती गयी वैसे-वैसे उनका झुकाव रामनाम पर आधार रखने की ओर बढ़ता गया और उसी को वे अपने और दूसरों के लिए सब रोगों की रामबाण दवा मानते गये।* उस दिन उपवास के दौरान ही तो उन्होंने विज्ञान की मर्यादाओं के बारे में तर्क करते हुए कहा था : ''गीता जिसका उल्लेख करती है उस 'एकांशेन स्थितो जगत्' का इसके सिवा और क्या अर्थ हो सकता है कि वह एक ऐसा धारण करने वाला तत्त्व है जिस पर सारी सृष्टि निर्भर करती है?'' अपने यजमान घनश्यामदास बिड़ला से उन्होंने रामनाम में अपनी श्रद्धा की बात करते हुए गहरे निःश्वास के साथ कहा था : ''अगर मैं अपने जीवन में इस श्रद्धा को चरितार्थ नहीं कर सका, तो मेरी मृत्यु के साथ ही वह समाप्त हो जायेगी।'' हुआ यह कि 'एड्रेनेलिन' जरूरी दवाइयों की पेटी में नहीं था। नोआखाली में सुशीला ने गांधीजी के लिए एक शीशी खास तौर पर मंगाकर रखी थी। परंतु मालूम होता है जब गांधीजी वहां से बिहार गये, तो उसे अपने साथ नहीं ले गये। इसकी उन्हें चिन्ता ही नहीं थी।

गांधीजी के साथियों में सबसे पहले बिड़ला-भवन पहुंचने वाले *सरदार पटेल* थे। वे उनके पास बैठ गये, नाड़ी देखी और माना कि अब भी धीमी-धीमी चल रही है। डॉ. भार्गव ने नाड़ी देखी, बाद में आंखों के कोयों की परीक्षा की और धीरे से बोले : ''मरे को दस मिनट हो गये हैं।'' डॉ. जीवराज मेहता, डॉ. भार्गव के चेहरे पर टकटकी लगाये सामने ही खड़े थे। उन्होंने वेदना से सिर हिला दिया। आभा और मनु फूट-फूट कर रोने लगीं, परंतु थोड़ी ही देर में संभलकर रामनाम लेने लगीं। महात्माजी के निर्जीव शरीर के पास सरदार पटेल अपना उदास चेहरा लिये पत्थर बनकर बैठे थे। इसके बाद पंडित नेहरू आये, और गांधीजी के कपड़ों में सिर डालकर बच्चों की तरह सिसकने लगे। सरदार पटेल ने सांत्वना देते हुए स्नेहपूर्वक उनकी पीठ पर हाथ फेरा। फिर गांधीजी के सबसे छोटे लड़के देवदास आये और धीरे से बापू के हाथ अपने हाथों में लेकर फूट-फूटकर रोने लगे। बाद में *मौलाना आजाद, जयरामदास, राजकुमारी अमृतकौर, आचार्य कृपलानी और कन्हैया लाल मुंशी* आये। *लॉर्ड माउन्टबेटन* उसी दिन वायुयान द्वारा मद्रास से आये थे। वे लेडी माउन्टबेटन को वहां के अपने काम पूरे करने के लिए पीछे छोड़ आये थे। वे बिड़ला-भवन पहुंचे तब बाहर इतनी भीड़ थी कि वे बड़ी मुश्किल से अंदर आ सके।

ज्यों ही वे फाटक में घुसे, उनके चारों ओर भीड़ इकट्ठी हो गयी। एक गरम-मिजाज नवयुवक जोरे से बोला : ''जिसने गांधीजी की हत्या की, वह मुसलमान था।''

माउन्टबेटन ने अपनी विलक्षण सूझ से उसकी बात को बीच में ही काट कर कहा : ''मूर्ख, सब कोई जानते हैं कि वह हिन्दू था।''

उत्तेजित हो रही भीड़ पर इस बात का शांतिकारक प्रभाव हुआ। माउन्टबेटन के स्टाफ के एक सदस्य ने, जो उनके साथ था, उनसे पूछा : ''आप कैसे जानते हैं कि वह हिन्दू था?'' माउन्टबेटन ने उत्तर दिया : *''जरूर वह हिन्दू ही होगा; क्योंकि अगर वह मुसलमान है, तो हमारा सत्यानाश हो जायेगा।''*

सब कोई स्तब्ध थे। सरदार पटेल वेदना के भार से दबे-दबे अनुभव कर रहे थे। उन्होंने बाद में मुझसे कहा : *''दूसरे लोग रो लेते हैं और आंसुओं से अपना दुःख कम कर लेते हैं। मैं ऐसा नहीं कर सकता। परंतु मेरे दिमाग का कचूमर निकला जा रहा है।''*

पास के हलकी रोशनी वाले कमरे में पं. नेहरू एक कुर्सी पर बैठे हुए गहरी चिन्ता में डूबे हुए थे कि दूसरे दिन की श्मशान-यात्रा और दाह-संस्कार का प्रबंध कैसे किया जाय। बाद में उन्होंने मुझे बताया : *''अचानक मैंने मन में कहा, चलूं और बापू की सलाह लूं! फिर मैं समझ गया। हमारा दिमाग अपनी सारी मुश्किलें बापू के पास ले जाने का इतना आदी हो गया है।''*

एक क्षण की भी देर किये बिना तपे हुए योद्धा *माउन्टबेटन* ने परिवार के बड़े आदमी की तरह सारी स्थिति का भार अपने ऊपर ले लिया। अपने मित्र के शव के पास से उठकर वे सीधे पं. नेहरू के पास गये, इशारे से सरदार पटेल को भी उन्होंने अपने पास बुला लिया और कहा : *''गांधीजी का अंतिम अनुरोध*

मुझसे यह था कि मैं आप दोनों को निकट लाकर आपस में मित्र बनाये रखने की भरसक कोशिश करूं।'' अपने समान शोक की छाया में दोनों को किसी बाह्य प्रेरणा की आवश्यकता नहीं थी। दोनों ने अपने सिर हिला दिये और चुपचाप एक-दूसरे का आलिंगन किया। रात को माउन्टबेटन के अनुरोध पर दोनों ने आकाशवाणी से भाषण भी किया।

एक सुझाव यह दिया गया कि गांधीजी के शरीर को मसाले में रख कर कम से कम कुछ दिन तक दर्शन के लिए रखा जाय। लेकिन मैं जानता था कि मृत्यु के बाद गांधीजी शरीर की पूजा करने के कट्टर विरोधी थे। इसलिए मैंने हस्तक्षेप करना अपना पवित्र कर्तव्य समझा। मैंने डॉ. जीवराज मेहता के काम में कहा : ''लेकिन यह तो बापू की इच्छा के विरुद्ध होगा।'' डॉ. मेहता ने मुझसे कहा : ''तब तो आपको यह बात इन लोगों को बतानी चाहिए।'' यह कहकर उन्होंने मुझे आगे धकेल दिया। मैंने लॉर्ड माउंटबेटन को संबोधन करके कहा, *''मान्यवर, आपको यह बता देना मेरा कर्तव्य है कि शव को मसाले में रखने का रिवाज गांधीजी को बहुत नापसंद था और उन्होंने मुझे खास तौर पर यह स्थायी आदेश दे रखा था कि उनका शरीर वहीं जला दिया जाय जहां उनकी मृत्यु हो।'' डॉ. जीवराज मेहता* और *जयरामदास दौलतराम* ने मेरा समर्थन किया।

माउंटबेटन ने कहा : ''अगर गांधीजी पूरी आयु जीकर सम्मान के साथ साधारण मृत्यु पाते, तो यह बात बिलकुल ठीक होती। परंतु विशेष परिस्थिति को देखते हुए क्या आप नहीं मानते...?'' इतना कहकर वे रुक गये और हाथ फैलाकर उन्होंने प्रश्न का संकेत किया।

मैंने उत्तर दिया : ''गांधीजी ने मुझसे कहा था कि मरने पर भी मैं तुम्हें उलाहना दूंगा, यदि इस मामले में तुम अपने कर्तव्य से चूके।''

माउंटबेटन ने कहा : ''तो उनकी इच्छा का आदर किया जायेगा।'' और इस प्रकार गांधीजी के शव को मसाले में रखने का विचार छोड़ दिया गया।

रात के बाकी हिस्से में गांधीजी की मंडली के लोग गीता का मधुर पाठ करते रहे और कुछ सिक्ख मित्र, जो कि वहां मौजूद थे, सुखमनी साहब (सिक्ख धर्मग्रंथ) का पाठ करते रहे। इससे कमरे की निस्तब्धता भरती रही और बाहर उमड़ती हुई भीड़ दर्शन का आग्रह करती रही। जिस कमरे में शव रखा हुआ था उसके तमाम दरवाजों और खिड़कियों पर कांच से सटी हुई भीनी शोकपूर्ण आंखें और शोकमय चेहरे दिखायी देते थे। कुछ लोग अपनी मुट्ठियों से कांच की चौखट को खटखटाते थे। उनकी सिसकियां पैरों की खड़खड़ाहट के साथ मिलने से और बाहर इधर-उधर असंख्य जन-समूह के निश्वास के कारण ऐसी शोकपूर्ण स्वर-लहरी उठती और गिरती थी, जैसे तूफानी समुद्र का दूरस्थ क्रन्दन सुनाई दे रहा हो। कभी-कभी दरवाजों पर दबाव इतना बढ़ जाता था कि कांच के टुकड़े-टुकड़े उड़ जाने का और दरवाजे खुल कर सारी भीड़ के कमरे में घुस आने का डर पैदा होता था। कुछ देर चिन्तापूर्ण परामर्श के बाद मृत शरीर को छत पर ले जाकर दर्शनों के लिए एक झरोखे में रख दिया गया; तेज रोशनी से गांधीजी का शांत मुख और भी तेजस्वी हो गया।

...रात को आकाशवाणी पर *पं. नेहरू* की आवाज सुनी गयी : मित्रो, हमारे जीवन की ज्योति चली गयी और सर्वत्र अंधकार ही अंधकार छा गया है। मैं नहीं जानता कि आपसे क्या कहूं और कैसे कहूं। हमारे प्यारे नेता, जिन्हें हम बापू कहते थे, हमारे राष्ट्रपिता अब नहीं रहे।...जैसे हम उन्हें अनेक वर्षों से देखते आ रहे हैं, वैसे फिर नहीं देख पायेंगे। हम उनसे सलाह करने और सान्त्वना प्राप्त करने के लिए दौड़कर उनके पास नहीं जा पायेंगे। मैंने कहा कि प्रकाश चला गया है, लेकिन मेरा कहना गलत था; क्योंकि जो ज्योति इस देश में प्रगटी और जली, वह साधारण ज्योति नहीं थी। जिस ज्योति ने इतने वर्षों तक इस देश को प्रकाशित रखा है, वह अनेक वर्षों तक आगे भी इस देश को प्रकाशित करेगी; वह ज्योति हजार वर्ष के बाद भी इस देश में दिखायी देगी। दुनिया उसे देखेगी और असंख्य हृदयों को वह सान्त्वना देगी। कारण, वह ज्योति जीते-जागते सत्य का प्रतीक थी। वह शाश्वत पुरुष अपने शाश्वत सत्य के साथ हमारे बीच था, हमें सत्पथ की याद दिलाता था, हमें भूलों से बचाता था और इस प्राचीन देश को स्वाधीनता का मार्ग दिखाता था।''

ब्राह्म-मुहूर्त में शव को नहलाकर उस पर चन्दन लगाया गया। फिर उसे कमरे के बीच में लिटाकर फूलों से ढंक दिया गया। विदेशों के राजदूत सुबह आये और गांधीजी के पैरों में मालाएं चढ़ाकर उन्होंने दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी शांत श्रद्धांजलि अर्पित की।

जब मैंने गांधीजी के शांत उदास मुख को एकटक देखा—जिसपर अनंत शांति, क्षमा तथा दया का भाव अंकित था—तो गांधीजी के साथ के अपने उस समय से, जब मैं कॉलेज से ताजा निकलकर उज्ज्वल और अदम्य स्वप्नों तथा आशाएं लेकर उनके चरणों में आकर बैठा था, स्थापित हुए 28 वर्ष के घनिष्ठ और अखंड संबंध की असंख्य स्मृतियां मानस-पटल पर उभर आयीं। ये सब वर्ष कितने अधिक घटनापूर्ण थे!

जो घटना हुई थी, उसके अर्थ पर मैंने विचार किया। मैं चलित हो गया। फिर धीरे-धीरे पहले हल होने लगी। उस दिन जब गांधीजी ने मुझसे एक व्यक्ति के भी अपना कर्तव्य अच्छी तरह और पूरी तरह अदा करने के बारे में कहा था तब मुझे आश्चर्य हुआ था कि उनके कहने का ठीक अर्थ क्या हो सकता है। उनकी मृत्यु ने इसका उत्तर दे दिया। पहले जब वे उपवास करते थे तब हमसे देखते रहने और प्रार्थना करने के लिए कहा करते थे। वे कहते : ''जब तक पिता मौजूद रहता है तब तक बच्चों को खेलते ही रहना चाहिए। जब मैं चला जाऊंगा तब वे वही बातें करेंगे जो मैं आज कर रहा हूं।'' *गांधीजी की मृत्यु ने वह मार्ग बता दिया था, जिसपर हममें से बहुतों को चलना चाहिए, यदि हमें वह आग बुझानी हो जिसके समस्त देश में फैल जाने का खतरा खड़ा हो गया था और प्राप्त हुई स्वाधीनता उन्हीं लोगों को भोगनी हो, जिनके लिए गांधीजी ने उसे प्राप्त किया था।*

शव को फिर ऊपर ले जाकर अपार भीड़ को अंतिम दर्शन का मौका देने के लिए

झरोखे में रखा गया। साढ़े ग्यारह बजे सुबह अरथी बिड़ला-भवन से बाहर निकाल कर फौजी गाड़ी पर रखी गयी, जिसे झंडों और फूलों से सजाया गया था। श्मशान-यात्रा शुरू होने वाली ही थी कि अचानक फाटक के पास हलचल-सी हुई। उसी समय भीड़ छट गयी और उसने रास्ता दे दिया। *सुशीला* लाहौर से आ पहुंची थी। यह सोचकर वह बेचैन थी कि अंतिम समय में वह गांधीजी के पास नहीं रही; परंतु इस बात के लिए वह विधाता के प्रति कृतज्ञ थी कि गांधीजी के अंतिम दर्शन के लिए वह समय पर पहुंच गयी थी। सरदार पटेल ने उसे मदद देकर फौजी गाड़ी पर चढ़ाया।

यह बहावलपुर का अपना मिशन करके दिल्ली लौटते हुए 30 जनवरी को मुलतान (पश्चिम पंजाब) में रुकी थी। वहां के डिप्टी कमिश्नर की पत्नी ने उसे चाय पर बुलाया था। उसने पूछा : ''गांधीजी हमारे यहां कब आ रहे हैं?'' कुछ मिनट के बाद ही एक और महिला बहुत घबराई हुई कमरे के भीतर आकर चिल्लाई : ''दुनिया का क्या होने जा रहा है? कहते हैं कि गांधीजी को गोली मार दी गयी है!''

बाद में सुशीला ने बताया : ''मैं पीली पड़ गयी और थर-थर कांपने लगी। अपने मन में बोली, 'नहीं, नहीं, यह अफवाह ही होगी'।''

डिप्टी कमिश्नर बोले : ''हम दिल्ली टेलीफोन करके पता लगा लेंगे।'' परंतु सुशीला पता लगाना नहीं चाहती थी। वह आशा के अंतिम धागे से चिपटी रहना चाहती थी। बापू का घाव शायद गंभीर नहीं होगा। उसने उत्तर दिया : ''आप कष्ट न करें। मुझे तुरंत लाहौर चल देना चाहिए। मैं जल्दी से जल्दी दिल्ली पहुंच जाना चाहती हूं।''

...सुशीला अंत समय में गांधीजी के पास न रह सकने के लिए अब भी उद्विग्न थी। उसने उस दिन शाम को गहरी वेदना से कहा : ''यह सजा किसलिए भगवान ने मुझे दी?'' देवदास ने उसे सान्त्वना दी : ''यह सजा नहीं; यह तो तुम्हारे लिए गर्व और सौभाग्य की बात है कि तुम बापू के अंतिम आदेश का पालन कर रही थी। तुम हम सबसे ज्यादा भाग्यशाली हो।''

रक्षा-मंत्रालय ने श्मशान-यात्रा के प्रबंध का सारा दायित्व ले लिया था। जिम्मेदारी इतनी बड़ी थी कि किसी सेवा संस्था द्वारा उसका पूरा किया जाना शक्ति से बाहर माना गया। *सारे शहर में उथल-पुथल मची हुई थी; ऐसी अशांति की संभावना थी, जिससे देशभर में हिंसा के फूट पड़ने का अंदेशा था। यह एक भयंकर स्थिति थी।* सेनावालों ने रातभर में फौजी गाड़ी को अरथी का रूप दे दिया था। उसके बीच में उठे हुए मंच पर शव को रखा गया था। शव को सफेद, हरे और केसरिया रंग के राष्ट्रीय झंडे से ढंक दिया गया था, जो फूलों और फूलमालाओं के ढेर से आधा दब गया था। अरथी की दायीं ओर गांधीजी के तीसरे पुत्र रामदास बैठे, बायीं ओर सरदार पटेल और सामने की तरफ देवदास गांधी बैठे। गांधीजी के 'परिवार' के दूसरे लोग और नेतागण बारी-बारी से अरथी के पास गाड़ी पर बैठते रहे या रामधुन गाने वाली मंडली के पीछे-पीछे चलते रहे।

सारा जुलूस इंच-इंच करके बहुत धीमी गति से शोकपूर्ण मौन के साथ आगे बढ़ रहा था। बीच-बीच में 'महात्मा गांधीजी की जय' के नारों की गूंज सुनायी देती थी। एक घंटे के बाद जुलूस युद्ध-स्मारक के गुम्बद तक पहुंचा। लोग आसपास भरे हुए पानी को पार करके पंचम जार्ज की मूर्ति के नीचे की जगह पर पहुंच गये थे। वे पत्थर की छतरी को संभालने वाले खंभों पर लटक गये थे। डेढ़ सौ फुट ऊंचे युद्ध-स्मारक की चोटी पर, रोशनी और तार के खंभों पर और रास्ते के दोनों तरफ के पेड़ों की टहनियों पर भी लोग बैठे दिखायी देते थे, ताकि शवयात्रा नीचे से गुजरे तो उसे अच्छी तरह देख सकें। सारे केन्द्रीय मैदान में आदमी ही आदमी दिखायी देते थे, जो दूर से देखने पर लगभग स्थिर-से जान पड़ते थे। जब जुलूस हार्डिंग मार्ग से नीचे उतर कर दिल्ली दरवाजे के पास पहुंच रहा था उस समय कई बार वायु सेना के तीन विमानों ने फूलों की वर्षा की।

तीसरे पहर 4.20 बजे जुलूस यमुना के निकट राजघाट की श्मशान-भूमि पर पहुंचा। वहां लोग सुबह से ही इकट्ठे होने लगे थे। जहां तक दृष्टि पहुंचती थी, श्मशान-भूमि के चारों ओर का सारा प्रदेश शोक-संतप्त मुख-मंडलों का एक समुद्र-सा दिखायी देता था। अरथी के चारों ओर जो घेरा बनाया गया था उसे तोड़कर लोग भीतर घुसते गये और सेना के सैनिक उन्हें हटाने के लिए जद्दोजहद करते रहे। घुड़सवारों ने बड़ी मुश्किल से उन्हें अरथी पर टूट पड़ने से रोका। कई बच्चे मूर्छित हो गये। सरदार पटेल, पंडित नेहरू और श्रीमती माउंटबेटन कुछ बच्चों को सुरक्षित स्थान पर ले जाते देखे गये।

अंत में अरथी सैनिक गाड़ी से उतारी गयी और एक ऊंचे चबूतरे पर रख दी गयी, जो चिता के पास ही अंतिम संस्कार के लिए बनाया गया था। साढ़े चार बजे शव चिता पर रखा गया। दाह-संस्कार के लिए 15 मन चंदन, 4 मन घी, 2 मन धूप, 1 मन नारियल और 15 सेर कपूर एकत्र किया गया था। मृत शरीर के चरणों में फूलमालाएं और गजरे अर्पित किये गये। राजधानी के राजदूतों में बुजुर्ग चीनी राजदूत ने सबसे पहले यह भेंट अर्पण की। इसके बाद जिस भारतीय राष्ट्रीय झंडे से अरथी ढंकी हुई थी वह हटा दिया गया। देवदास गांधी ने अपने पिता के पवित्र गंगाजल से अभिसिंचित शरीर पर चंदन की लकड़ियां रखीं। वैदिक मंत्रों के पाठ के साथ चिता में आग उनके बड़े भाई रामदास गांधी ने लगायी।

जब दाह-संस्कार हो रहा था उस समय लॉर्ड और लेडी माउंटबेटन अपनी दोनों पुत्रियों के साथ अन्य लोगों के बीच जमीन पर बैठे थे। बहुत से 'पुराने नेता' सिसकते देखे गये थे। सरदार पटेल मूर्तिवत् बैठे थे। उनका हाथ एक सिसकती हुई लड़की के सिर पर रखा हुआ था।

पौने पांच बजे। धीरे-धीरे आग की लपटें लकड़ियों में फैलने लगीं, तब अरथी के पास का जन-समूह एक मिनट के मौन द्वारा राष्ट्रपिता को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए उठा। उधर सूर्यास्त हो रहा था, इधर आग की लाल-लाल लपटें

आकाश से बातें कर रही थीं। विशाल जन-समूह में एक बुलंद नारा गूंजा : 'महात्मा गांधी अमर हो गये!' महात्माजी के पार्थिव शरीर को अग्निदेव ने स्वाहा कर लिया और वह अंतिम संस्कार इस वैदिक प्रार्थना की सिद्धि का प्रतीक बन गया :

'असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय।'

धूप की सुगंध ने सारे वायुमंडल को सुवासित कर दिया। शीघ्र ही अग्नि की तीव्रता इतनी भयंकर हो उठी कि सामने की कतारों में बैठे हुए लोग वहां बैठ न सके। 6 बजे तक महात्माजी के अवशेष पूरी तरह जलकर भस्मीभूत हो गये।

सूर्यास्त के साथ-साथ भीड़ छंटने लगी। जब हम लौटे तो बिड़ला-भवन अंधकार में डूबा हुआ था। गांधीजी के कमरे में रोशनी नहीं थी। आज वहां श्मशान की-सी शांति थी, जबकि कल तक गांधीजी के वहां होने से वह कमरा संसार के ध्यान का केन्द्र बना हुआ था। मेरे मन में फिर यह प्रश्न खड़ा हुआ : *गांधीजी सदा यह कहते थे कि अहिंसा जगत में सबसे अधिक सक्रिय शक्ति है, जो सारी बाधाओं को जीत लेती है और जिसके सामने सारा द्वेष, सारी घृणा मिट जाती है। तो फिर वे, जो अहिंसा की जीवंत मूर्ति थे, हत्यारे की गोलियों का शिकार क्यों हुए? इस रहस्य ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया था। परंतु जब भीतरी तूफान शांत हुआ तब इस प्रश्न का सीधा और स्पष्ट उत्तर मुझे मिल गया।*

यदि गांधीजी अपनी चमत्कारिक सफलताओं के ठीक बाद मरे हेते, तो भी इस प्रश्न का उत्तर बाकी ही रहता : ''क्या न्याय और शक्ति समान और एक-दूसरे का स्थान लेने वाले शब्द हैं? यदि सत्याग्रह सर्वविजयी शक्ति हो—जैसी कि निःसंदेह वह है—तो हमें यह समझने से कौन रोकता है कि जहां भी सफलता है वहां न्याय है? और क्या इससे अनजाने मनुष्य की यह धारणा नहीं बन सकती कि शक्ति ही न्याय है और क्या मनुष्य सफलतापूर्ण शक्ति को ही ईश्वर नहीं मान लेगा? यह बड़ा खतरनाक सिद्धांत है, क्योंकि जब हम इतिहास की घटनाओं और प्रक्रियाओं को संपूर्ण रूप में न देखकर देशकाल की सीमित परिधि के भीतर देखते हैं, तो दुनिया में शक्ति अकसर जीतती दिखायी देती है और सत्य तथा न्याय की हार होती दिखायी देती है।

गांधीजी ने अपने अंत के द्वारा हमारे लिए इस प्रश्नचिह्न को मिटा दिया। ''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''—हमारे कर्म हमारे हैं, उनके फल हमारे हाथ में नहीं हैं। *मनुष्य सदा ही घटना-चक्र पर नियंत्रण नहीं रख सकता और समस्त मानव-प्रयत्नों के बावजूद किसी न किसी समय जीवन में विपरीत बातें हो सकती हैं। इसका कारण है 'अदृश्य शक्ति' का कार्य। 'दैवं चैवात्र पंचमम्'—किसी कार्य की सफलता में दैव पंचम तथा निर्धारक तत्त्व होता है। परंतु सत्याग्रही इसमें से बुराई को सदा बाहर निकाल कर विषय को अमृत बना सकता है—और वह इस तरह कि सत्य और अहिंसा की दृष्टि से उसके प्रति सही प्रतिक्रिया प्रकट करके वह जीवन की दुर्घटनाओं से उनका डंक दूर कर दे तथा मृत्यु की विजय को निष्फल बना दे।* (साभार, *'पूर्णाहुति, खंड-4'*)

चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी सम्मेलन : 23-24 मार्च

निमंत्रण

मान्यवर,

चम्पारण सत्याग्रह अहिंसक आंदोलनों के इतिहास में मील का पत्थर है। यह किसानों का आंदोलन, राष्ट्रीय स्मिता तथा पूंजीवादी साम्राज्यवाद के विरोध का आंदोलन था। इस सत्याग्रह के सौवें वर्ष में भी शोषण, अत्याचार तथा दमन का दौर जारी है। किसानों की दुर्दशा का तो पार ही नहीं। कृषि-प्रधान भारत में हर वर्ष हजारों किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।

इस सत्याग्रह की स्मृति एवं सत्याग्रह के नये संकल्पों के लिए 23-24 मार्च, 2017 को मोतीहारी (बिहार) में *'चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी सम्मेलन'* आयोजित किया गया है। सम्मेलन का उद्घाटन महात्मा गांधी के पौत्र *श्री तुषार गांधी* करेंगे। *सुश्री मेधा पाटकर, रवीश कुमार, पद्मश्री तुलसी मुंडा, स्वामी अग्निवेश, डॉ. एस. एन. सुब्बराव, पी. वी. राजगोपाल एवं राजेन्द्र सिंह* सम्मेलन के विशिष्ट अतिथि होंगे। सम्मेलन का मुख्य विषय है—***'चम्पारण सत्याग्रह और नव-उपनिवेशवाद'।***

आप मित्रो सहित सम्मेलन में सादर आमंत्रित हैं।

स्थान : एम.एस. कॉलेज, मोतीहारी : 23-24 मार्च, 2017 : 11 बजे

:: हम हैं ::

जयवंत मठकर अध्यक्ष, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान	आदित्य पटनायक संयोजक, सर्वोदय समाज	डॉ. रज़ी अहमद मंत्री गांधी स्मारक संग्रहालय, पटना
किशन गोरडिया संयोजक, सद्भावना संघ	भवानीशंकर कुसुम संयोजक, संपूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच	त्रिभुवन नारायण सिंह अध्यक्ष, बिहार सर्वोदय मंडल
डॉ. रामजी सिंह पूर्व सांसद	तपेश्वर भाई	रामशरण
ब्रजकिशोर सिंह संरक्षक, सम्मेलन स्वागत समिति मंत्री, गांधी स्मारक संग्रहालय	हरिनारायण ठाकुर स्वागताध्यक्ष, सम्मेलन स्वागत समिति प्राचार्य, एम.एस. कॉलेज	महादेव विद्रोही अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ सेवाग्राम, वर्धा

सम्पर्क : सर्व सेवा संघ, प्रधान कार्यालय, महादेव भाई भवन, सेवाग्राम-442102, वर्धा (महाराष्ट्र), फोन : 07152-2840-61/91, E-mail : sarvasevasangha@hotmail.com पर किया जा सकता है।

यह मौन तोड़ना होगा

❑ न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

'गोडसे' को राष्ट्रभक्त कहा जा रहा है। और गोडसे के 'स्टेच्यू' या प्रतिमा प्रस्थापित करने के लिए हर बड़े शहर में जमीन की माँग हो रही है। यह भी कहा जा रहा है कि गांधीजी राष्ट्रपिता नहीं थे। यह सारी बातें नयी नहीं हैं, लेकिन नये सिरे से और नये तरीकों से उभर रही हैं, उजागर हो रही हैं, यह अपने आप में चिन्ता की बात है, जिसे समझ लेने की आवश्यकता है। हत्या का उदात्तीकरण जितना किया जा सके, उतना करने की वृत्ति है; फिर महापुरुषों की प्रत्यक्ष हत्या हो या उनका चरित्र हनन होता हो। सहस्त्र वर्षों के सबसे श्रेष्ठ मानव का चरित्र-हनन अपनी आसुरी महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए ही है। यह सुनियोजित ढंग से चलने वाले षड्यंत्र का ही एक हिस्सा है।

'गांधी वध' शब्द हेतु का उपयोग करने के पीछे यही मानसिकता है। 'वध' तो दुर्जनों और राक्षसों का होता है और इसे धर्म कृत्य माना जाता है। 'वध' शब्द के प्रति मैंने जब आक्षेप लिया, तब हिन्दुत्ववादियों ने मुझे शब्दकोश दिखाकर कहा कि खून, हत्या, वध ये तीनों शब्द समानार्थी हैं। ये लोग भूल जाते हैं कि शब्दकोश में केवल पर्यायवाची शब्द रहते हैं। कई बार शब्दों का सही, सटीक अर्थ उस शब्द के प्रचलित अर्थ में ढूँढ़ना पड़ता है। ये तीनों शब्द समानार्थी हो सकते हैं, तो क्या 'प्रभु रामचन्द्र ने रावण का खून किया' अथवा 'छत्रपति शिवाजी महाराज ने अफजल खान का खून किया' ऐसा कहना चलेगा या रुचेगा? वह कभी रुचेगा नहीं, रुचना भी नहीं चाहिए। गांधीजी के खून के लिए अंग्रेजी में *असॅसिनेशन* शब्द का उपयोग हुआ था। उसका अंग्रेजी शब्दकोश में अर्थ है *'विश्वासघातपूर्वक किया गया भीषण खून'!* ऐसे खून द्वारा मनुष्य और विचार दोनों समाप्त करने की प्रक्रिया पूरी की जा सकती है, यह धारणा है। इसलिए तो *बर्नार्ड शॉ* ने कहा कि 'हत्या करना सेंसरशिप का अन्तिम मार्ग है।' अर्थात 'न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।' नाथूराम गोडसे से इसी वृत्ति का प्रतिनिधि था। अतः गोडसे एक व्यक्ति नहीं था; वह एक प्रवृत्ति थी, एक विकृति थी। पश्चिम के प्रसिद्ध दार्शनिक *खलील जिब्रान* ने कहा है "संसार के महामानवों के जीवन का अन्त हत्या के रूप में या आत्मबलिदान के रूप में हो, ऐसा संकेत दिखता है। *सुकरात, ईसा मसीह, अब्राहम लिंकन* ये अत्यन्त सुन्दर (भव्य) जीवन इस संसार में उत्पन्न हुए। उन्हें मार डाला गया और उस समय आकाश जोर से अट्टहास करने लगा।" ऐसी काव्यपूर्ण भावना (कल्पना) जिब्रान ने व्यक्त की है। जिब्रान कुछ वर्ष और जीवित रहता तो वह इस सूची में *महात्मा गांधी* तथा *मार्टिन लूथर किंग* के नाम निश्चित ही समाविष्ट कर देता।

धर्म, सम्प्रदाय तथा राजनीतिक प्रवाह के नाम पर खून करना, धर्म-कृत्य कहा जाता है। इसी उपद्रवी शक्ति को राजनीतिक शक्ति माना जाता है। इसी में से 'गांधी-वध' शब्द प्रकट हुआ। गांधीजी की हत्या के बाद खून करने की प्रक्रिया में प्रगति हुई। राजनीतिक हत्याओं की संख्या बढ़ी। वह राजनीतिक अस्त्र का हिस्सा बना। यह तो 'लोकनीति' और 'कानून के राज' की ही हत्या है। इतना ही नहीं; गांधीजी को 'राष्ट्रपिता' देशगौरव सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था, किसी अन्य गांधी भक्त ने तो नहीं कहा था। उन्हें भारत पिता या हिन्दुस्तान का पिता भी नहीं कहा गया, कारण स्पष्ट है। गांधी के उदय के पहले भारत भौगोलिक देश था। यहाँ के लोगों में परस्पर साथ जीने की आकांक्षा नहीं थी। इसलिए यह राष्ट्र नहीं था।

जब संसार में सर्वत्र जातिवाद, धर्म और सम्प्रदाय की जयजयकार हो रही थी, शस्त्रों और परमाणु बमों की भाषा सुनाई दे रही थी, तथा सभी देश और मानव-मानव का दुश्मन बनने में ही जीवन की सार्थकता मान रहे थे, वह तब महामानव उच्च स्वर से आत्मविश्वासपूर्वक कहता था कि 'मुझे अपनी अहिंसा की शर्म नहीं लगती।' उस व्यक्ति की हत्या, और हत्यारे का उदात्तीकरण करना, या वह 'राष्ट्रपिता' नहीं था, यह कहना तो घोर पाप मानना चाहिए ना?

न्यूयार्क में गांधीजी की प्रतिमा (स्टेच्यू) स्थापित करने का सर्वाधिक विरोध इसी वृत्ति के भारतीयों ने ही किया था। गांधीजी की मानवीय करुणा, आचरण-मूल्य की शुद्धता, सत्यनिष्ठा, संकल्प-शक्ति से मानवीय जीवन को समृद्ध करने वाला जीवन-संदेश केवल मुख से भजन गाने जितना ही रहने वाला है क्या? गांधी का उपयोग करते हुए और उनका नाम लेते-लेते, गोडसे-वृत्ति बढ़ाकर गांधी-मूल्यों की, विचारों की रोज-रोज हत्या करने की वृत्ति कहीं तो थमनी या रुकनी चाहिए। गांधी की मृत्यु हुए कई साल हो गये, लेकिन उनकी 'उत्तर क्रिया' आज भी

चल रही है। इससे बड़ी शोकांतिका दूसरी नहीं हो सकती। इसीलिए हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ने कहा था—

अच्छा हुआ गांधी तू तब मर गया
वरना आज रोज मरता।

महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद भी उनके प्रति द्वेष समाप्त नहीं हो रहा है, इस विषय पर बहुत गंभीरतापूर्वक विचार करना जरूरी है। यह सब असत्य पर आधारित प्रचार क्यों किया जाता है? गांधी की हत्या करने के पाँच-दस बार जो प्रयास किये गये, उनमें से तीन में नाथूराम गोडसे शामिल था। उस समय पाकिस्तान का प्रश्न या पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये देने का प्रश्न ही नहीं था। गांधीजी को द्विराष्ट्रवाद मान्य नहीं था। वे पाकिस्तान निर्माण के एकदम विरोधी थे। पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये देने से गांधीजी के अनशन का कोई सम्बन्ध नहीं था। उनका उपवास 18 जनवरी, 1948 तक चला। पचपन करोड़ रुपये (जो देना तय था) 14 जनवरी को दे दिये गये थे। राशि देने के बाद भी उपवास चल रहा था, जो वास्तव में शांति स्थापना के लिए था। फिर भी उन्हें मार डालने के बाद यह षड्यंत्र, यह कारस्तानी अब तक कैसे चल रही है? फिर भी झूठा प्रचार और प्रसार क्यों चलाया जा रहा है, इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा।

प्राण त्यागते समय 'हे राम' का उच्चारण करने वाले महात्मा गांधी के खून का उदात्तीकरण करना राम-तत्त्व का ही खून करना है। *बहुसंख्यकों की धर्मान्धिता अधिक घातक और पाशविक होती है, यह नहीं भूलना चाहिए। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि दो धर्म के लोग एक साथ नहीं रह सकते और पाकिस्तान यही चाहता है। जब अधिसंख्यकों की धर्मान्धिता आक्रामक हो जाती है, तब सारी सुव्यवस्था और राष्ट्रीय भावना खत्म हो जाती है। यह एक प्रकार से भारत और भारतीयता का खून है। इस तरह गांधी नहीं मिटेगा, परन्तु भारत की प्रतिष्ठा तो मिट्टी में मिल जायेगी। ऐसे लोग राष्ट्रप्रेमी नहीं होते, वे द्वेष से अंधे बन जाते हैं।* उन्हें तो अब भारतीय हृदय का भी भान नहीं है। वे भारतीय आत्मा को ही भूल चुके हैं। धर्मान्धता के कारण उन्हें अंधत्व प्राप्त हो गया है; उनकी समस्त संवेदनाएँ खत्म हो गयी हैं।

ये यह भी नहीं समझते कि भारतभूमि में से ही नहीं, बल्कि विश्व में से भी गांधी का नाम या विचार पोंछकर मिटाया नहीं जा सकेगा। कुछ बीज ऐसे होते हैं, जो हृदय में, रग-रग में, रक्त में घुलमिल जाते हैं। कितने ही भयंकर तूफानी बादल आएं, आँधियाँ आएं, पत्ते और डालियाँ गिर जाएं, वे बीजांकुर मूल से उखड़कर गिर नहीं जाते, बीज जीवन्त ही रहते हैं। मिट्टी में दबे रहने के कारण दिखते भले ही नहीं हैं। वर्षा होने पर, मौसम बदलने पर, अंकुरित हो जाते हैं; उनमें नई-नई कोपलें फूटती हैं और फिर वृक्ष बनकर वह पुनः फैलता है। इसी प्रकार गांधी भारत के गरीब, गाँव-देहात में रहने वालों के हृदयों में, हाड़-मांस में बसा हुआ है, जाग रहा है। किन्हीं की द्वेषमूलक करनी या षड्यंत्रों से उस 'बीज' को कुछ नहीं होने वाला। प्रहार करने वाले प्रहार करते ही रहेंगे, पर गांधी का प्रभाव कम नहीं होगा। गांधी चारित्र्य पुस्तक में नहीं है, वह हृदय पर उत्कीर्ण है। क्योंकि आखिर गांधी का जीवन ही उनका संदेश था। असत्य पर आधारित कलुषित व विकृत इतिहास नये सिरे से, चाहे जैसा लिख डालने का महत्त्वाकांक्षी लोग प्रयत्न करते रहें, यथार्थ चरित्र और चारित्र्य को मिटा तो नहीं सकेंगे, किन्तु सही सवाल यह है कि तब तक सज्जन सोते रहेंगे क्या? क्या दुर्जनों को ही सक्रिय होने देना है? अब्राहम लिंकन के कथनानुसार ''जब आवाज उठाने की और कार्य करने की आवश्यकता हो तब जो चुप्पी साध लेते हैं, वे भीरु होते हैं और डरपोकों की ही प्रजा का निर्माण करते हैं।'' *मार्टिन लूथर किंग* ने भी कहा था कि *''दुर्जनों के बुरे कर्मों की अपेक्षा सज्जनों का मौन अधिक खतरनाक (घातक) होता है।'' इसी को मौन समर्थन कहते हैं, यही राक्षस की शक्ति है। यह मौन तोड़ना होगा। सामान्य जनों और सज्जनों का सक्रिय होना जरूरी है, अन्यथा गुजरात की एक कहावत के अनुसार, सज्जन एक-दूसरे से मात्र श्मशान में ही मिलेंगे, और महात्मा गांधी की हत्या दिन-प्रतिदिन होती रहेगी।* खलील जिब्रान के शब्दों में 'दुष्टों के कृत्य के लिए पुण्यशील निष्पाप नहीं रहा करते' इसे भी ध्यान में रखना चाहिए। ❑

'मेरे सपनों का भारत'

मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंच-नीच का कोई भेद न हो। जातियां मिल-जुलकर रहती हों। ऐसे भारत में, अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए कोई स्थान न होगा। उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे। सारी दुनिया से हमारा संबंध शांति व भाईचारे का होगा। यह है मेरे सपनों का भारत।

–मो. क. गांधी

वन मैन बाऊंड्री फोर्स

❑ आसिफ वसी

15 अगस्त, 1947 को मायूसी, गम, गुस्सा और नफरत के माहौल में दुखी दिल से हिन्दुस्तान के लोगों ने आजादी का स्वागत किया था। पंजाब और बंगाल के बंटवारे ने स्थानीय विधी व्यवस्था को तो ध्वस्त कर ही दिया था, दिल्ली और उसके आसपास के इलाके पर भी उसका बुरा असर पड़ रहा था। सामान्य प्रशासन को संभालना भी मुश्किल हो गया था। व्यवस्था पर नजर रखे वाइसराय लार्ड माउंटबेटन एक अनुभवी फौजी अधिकारी थे, लेकिन उन्हें सिविल मामलों का तर्जुबा नहीं के बराबर था। हिन्दुस्तान की परिस्थिति ने उन्हें उलझनों में डाल रखा था। उनको पंजाब में तैनात अपने 55 हजार फौजियों पर भरोसा था कि वे पंजाब की स्थिति पर काबू पा लेंगे, लेकिन उनका अंदाजा गलत निकला। वहां जो बर्बादी हुई उसने इंसानियत को शर्मिन्दा कर दिया। पंजाब की विफलता ने फौजी शक्ति को पर्याप्त समझने वाले वाइसराय को अपनी नीति बदलने पर मजबूर किया। वह बंगाल के बारे में ज्यादा चिन्तित दिख रहे थे, क्योंकि 1946 में वहां हुए दंगों की तल्ख यादें ताजा थीं। कलकत्ता की शहरी बनावट, गुंजान आबादी और सकरी गलियां फौजी ताकत पर भरोसा रखने वाले वाइसराय की स्ट्रेटजी के अनुरूप नहीं थीं। वह चिन्तित थे कि घनी आबादी और तंग गलियों वाले कलकत्ता में अगर फिर दंगा फूट पड़ा तो उस पर काबू पाना असंभव होगा, क्योंकि उन गलियों में दंगाइयों पर काबू पाने के लिए फौजी जा ही नहीं सकते थे। अतः पंजाब से ज्यादा भयानक स्थिति का अंदेशा उन्हें बंगाल में था। इससे पहले की स्थिति बिगड़े उन्होंने एहतियाती कदम उठाते हुए गांधीजी का सहयोग लेना जरूरी समझा। 15 अगस्त से पहले ही जुलाई में उनसे संपर्क किया और बंगाल जाने के लिए राजी किया। वह मानते थे कि बंगाल के बंटवारे के बाद अगर वहां की स्थिति बिगड़ती है तो उनकी मौजूदगी से वह ज्यादा बिगड़ेगी नहीं। यह सच है कि साम्प्रदायिक जनून ने देश में जो फिजा बना दी थी उसमें लोग किसी की कुछ सुनने को तैयार नहीं थे और अगर किसी की कुछ बात सुन भी रहे थे तो वे गांधीजी की बातें ही थीं। गांधीजी की नैतिक शक्ति पर वाइसराय को भरोसा था। नोआखाली और दूसरी जगहों पर इसका प्रदर्शन हो चुका था। वह समझ रहे थे कि उनकी मौजूदगी बंगाल की व्यवस्था के लिए उपयोगी होगी।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के तहत 1937 में हुए चुनाव के नतीजे में कई प्रांतों में कांग्रेस को सरकार बनाने का मौका मिला था। इस महत्त्वपूर्ण राजनैतिक पहल को आजादी की पहली किस्त का मिल जाना समझा गया। उसके बाद की घटनाओं से अब यह स्पष्ट हो चला था कि हिन्दुस्तान जल्द आजाद हो जायेगा। नतीजतन विभिन्न राजनैतिक और सामाजिक संगठनों के बीच सत्ता में उचित भागीदारी की कशमकश तेज हो गयी। अपने जाने से पहले अंग्रेज हिन्दुस्तान की सत्ता, सत्ता की भागीदारी की कशमकश में सक्रिय किस संगठन को सौपेंगे और सत्ता प्राप्ति के बाद उनका दूसरी पार्टियों-संगठनों के प्रति क्या रवैया होगा, इस प्रश्न पर पार्टियां संजीदा और चौकस थीं। अंग्रेजों के जाने के बाद की संभावित सत्ताधारियों की मेहरबानियों पर वे अपनी हिस्सेदारी के लिए निर्भर रहना नहीं चाहती थी। अतः अंग्रेजों के हिन्दुस्तान की सत्ता छोड़ने और यहां से चले जाने से पहले यह संगठन आजाद हिन्दुस्तान की सत्ता व्यवस्था में अपनी हिस्सेदारी की उनसे पुख्ता संवैधानिक जमानत चाहते थे।

आजादी की लड़ाई में यूं तो स्थानीय तौर पर अनेक संगठन सक्रिय थे लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य भूमिका निभाने वाली दो प्रमुख पार्टियां और उनके सहयोगी संगठन, कांग्रेस और मुस्लिम लीग, अपने-अपने जनाधार की बुनियाद पर सत्ता में अपनी हिस्सेदारी के दावों के साथ मैदान में आमने-सामने थीं। कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी थी और सभी वर्ग और समुदाय के प्रतिनिधित्व का दावा करती थी। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग मुसलमानों के हितों की वकालत कर रही थी तो डॉ. अम्बेडकर दलितों और मास्टर तारा सिंह सिखों की। यह तो स्पष्ट था कि सबसे बड़ी पार्टी को सत्ता सौंपी जानी थी, और उसी सत्ता में अपनी भागीदारी की संवैधानिक जमानत सब संगठनों की मांग थी। भागीदारी की कशमकश ने जो परिस्थिति बनायी थी उसमें उलझनों से भरे कई प्रश्न उभर कर सामने आये थे। आजादी मिलने के बाद हिन्दुस्तान की क्या रूपरेखा होगी; प्लूरल बनावट वाले हिन्दुस्तान के विभिन्न घटकों की किस अनुपात में हिस्सेदारी होगी, उसका हल ढूंढ़ना और निर्णायक नतीजे पर पहुंचना आसान नहीं था। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच 1916 का लखनऊ पैक्ट, 1928-29 का नेहरू रिपोर्ट, तीन राउंड टेबुल एवं शिमला कान्फ्रेंस और 1946 का कैबिनेट मिशन उसी प्रश्न को सुलझाने के प्रयास थे।

अंग्रेजों द्वारा ट्रांसफर ऑफ पॉवर और उसके बाद उस पॉवर में हिस्सेदारी की जोड़-तोड़ में मुस्लिम लीग ने 1940 में दो राष्ट्रीयता की बुनियाद पर 'पाकिस्तान' की मांग को सामने लाकर बड़ी पेचीदगी पैदा कर दी थी। सत्ता में भागीदारी की कशमकश और उस प्रश्न के हल की कुंजी अपने हाथों में लिए अंग्रेजों की बदनीयती भरी चाल ने हिन्दुस्तान की राजनीति को उलझा रखा था। धीरे-धीरे परिस्थिति कुछ ऐसी बन गयी थी जहां संवेदनशील मुद्दों की बुनियाद पर अब राजनैतिक प्रश्नों के हल ढूंढ़े जा रहे थे। नतीजतन समाज का ताना-बाना बिखर रहाा था। लोग कांग्रेस और मुस्लिम लीग या अन्य संगठनों की बात न कर अब हिन्दू, मुसलमान और सिख की बात करने पर उतर आये थे। अधिकांश लोगों के आपसी रिश्तों में तकलीफदेह बदलाव दिख रहा था। पुश्त-दर-पुश्त साथ रह रहे लोगों का व्यवहार अजनबियों जैसा हो गया, बात इतनी बढ़ी कि

उन्हें अब एक साथ रहना भी गवारा नहीं था। रिश्तों की डोर टूटी, लोग तीखा तेवर लिये नदी के दो किनारों पर खड़े नजर आने लगे। 1921-22 के प्रथम असहयोग-खिलाफत आंदोलन के समय यहां की गंगा-जमुनी संस्कृति के पृष्ठभूमि में हिन्दू-मुस्लिम एकता और साम्प्रदायिक सौहार्द की बुनियाद पर जो माहौल बना था, हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता की जो इमारत तैयार हुई थी, उसकी ईंटें खिसकने लगीं।

15 अगस्त, 1947 की आधी रात में जब जवाहरलाल नेहरू दिल्ली में आयोजित कार्यक्रम में आजादी के सपने के पूरा होने और हिन्दुस्तान को आजाद हो जाने की घोषणा कर रहे थे, आजादी की लड़ाई के मार्गदर्शक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, कलकत्ता के दंगा-ग्रस्त क्षेत्र बेलियाघट्टा के दंगाइयों के ईंट-पत्थर के शिकार हुए 'हैदरी हाऊस' के एक अंधेरे कमरे में खामोश बैठे थे। गांधीजी को नुकसान पहुंचाने की कोशिश में दरवाजों और खिड़कियों के शीशे उन दंगाइयों के आक्रोश का शिकार बने थे। अपने शांति मिशन पर गांधीजी 9 अगस्त, 1947 को कलकत्ता के सोदपुर आश्रम पहुंचे थे और वहीं से हैदरी हाऊस गये थे और दंगाइयों के निशाने पर थे।

बंटवारे से उत्पन्न परिस्थिति में विभिन्न संगठन और भारत सरकार अपनी सेना शक्ति के भरोसे स्थिति को संभालने की कोशिश कर रही थी, लेकिन लोगों के बीच आपसी विश्वास का माहौल बनाने में उसे ज्यादा कामयाबी नहीं मिल रही थी। लाखों-लाख लोग सुरक्षित पनाह की तलाश में इधर से उधर और उधर से इधर पलायन कर रहे थे। दंगों का सिलसिला रुक नहीं रहा था। गांधीजी की स्थिति 'एक अनार सौ बीमार' वाली थी। दिल्ली, इसके आसपास और पंजाब में सामान्य स्थिति बनाने के प्रयास में वह लगे हुए थे। स्थिति बड़ी कठिन थी, फिजा में जहर घुला हुआ था। बंगाल में कलकत्ता, नोआखाली और उसके आसपास नफरत का तांडव लोग झेल चुके थे। बिहार में भी लोगों ने अपने पड़ोसियों के खून की होली खेली, उनके घर गृहस्थी को बर्बाद कर नोआखाली में हिन्दुओं के मारे जाने का बदला अपने साथ रहने वाले यहां के मुसलमानों से लिया। दर्जनों गांव उजड़े, हजारों लोग मरे और जो बचे उन्हें शरणार्थी कैम्पों में पनाह ले पर मजबूर होना पड़ा था। उलझनें ही उलझनें चारों ओर थीं।

गांधीजी के वक्तव्यों से स्पष्ट हो रहा था कि 15 अगस्त को दिल्ली में आयोजित आजादी के जश्न में वह नहीं शरीक होंगे। उस दिन वह नोआखाली के डरे-सहमे हिन्दुओं के बीच रहना चाहते थे ताकि बदली हुई परिस्थिति में वहां के लोगों का हौसला नहीं टूटे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की बुनियाद पर जो शांति का माहौल वहां बनाया था उसे नुकसान नहीं पहुंचे। लेकिन पंजाब में फौजियों की विफलता के मद्देनजर माऊंटबेटन चाहते थे कि गांधीजी कलकत्ता जायें ताकि उनकी मौजूदगी से वहां की स्थिति सामान्य बनी रहे। जब सरकार और मुसलमानों के लीडरों ने गांधीजी को अपने सहयोग का भरोसा दिलाकर आश्वस्त कर दिया कि नोआखाली में हिन्दु सुरक्षित रहेंगे, वहां की शांति भंग नहीं होगी, तब गांधीजी ने कलकत्ता जाने का फैसला किया और 8 अगस्त, 1947 को पटना से चलकर 9 अगस्त को कलकत्ता पहुंचे। कलकत्ता के नजदीक सोदपुर आश्रम में उनका रुकना हुआ। वहीं से बेलियाघट्टा के 'हैदरी हाऊस' गये जो कलकत्ता प्रवास के बीच उनका कैम्प बना।

पूरे देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच के तनावपूर्ण रिश्तों के कारण बंगाल के लोग भी घबराये हुए थे। शहीद सुहरवर्दी के मुख्यमंत्री काल में मुस्लिम लीग के डायरेक्ट एक्शन और उसकी प्रतिक्रिया में हुए दंगों की बर्बादी की रिपोर्ट सामने आ चुकी थी। खुद सुहरवर्दी चिन्तित थे और हर उस विकल्प की तलाश कर रहे थे, जिससे कलकत्ता सहित बंगाल में शांति बनी रहे। गांधीजी और उनके मिशन के रचनात्मक पहलू का स्वागत करते वह गांधीजी से सोदपुर आश्रम में मिले थे और कलकत्ता की स्थिति को सामान्य बनाये रखने की कोशिशों में अपने पूरे सहयोग का आश्वासन दिया था। खुद गांधीजी की स्थिति पर पूरी नजर थी। माऊंटबेटन के आग्रह को इस शर्त पर मंजूर किया था कि नोआखाली और उसके आसपास शांति बनी रहे, और अब खुद सुहरवर्दी भी गांधीजी के शांति मिशन में सहयोग करने को तैयार थे।

गांधीजी के 'हैदरी हाऊस' पहुंचते ही हिन्दुओं की उग्र भीड़ ने गांधी विरोधी नारा लगाते हुए उनकी गाड़ी को घेर लिया था, कुछ ने ईंट पत्थर बरसाये और कई ने तो गांधीजी पर जानलेवा हमला करते लाठियां भी चलायीं। उनका आरोप था कि गांधीजी कलकत्ता के मुसलमानों की सुरक्षा के लिए आये हैं, वह हिन्दू विरोधी हैं। उन्हें नोआखाली जाना चाहिए था, जहां हिन्दू खतरे में हैं। स्थिति को बिगड़ते देख गांधीजी ने जोखिम भरा कदम उठाया और गुस्से से तमतमाये लोगों के सामने आ गये, और बेखौफ होकर उन लोगों से कहा कि अगर *'उनको मारने से उनकी समस्या हल होती है तो वह उनके सामने हैं, वे उन्हें मार कर उसे हल कर लें।''* उन्होंने स्पष्ट किया कि वह तो नोआखाली की तरह भाईचारा बनाए रखें, उनका मकसद है। गांधीजी के नैतिक बल के सामने गुस्साये लोगों ने हथियार डाल दिये। वे शांत हुए। लोगों का आक्रोश कम हुआ और गांधीजी की बातें सुनने को तैयार हुए। गांधीजी की दिनचर्या अनुसार ही शाम में 'हैदरी हाऊस' के कम्पाउंड में प्रार्थना सभा आयोजित हुई। उस दिन प्रार्थना सभा में दस हजार लोग एकत्र हुए, यह बड़ा शुभ संकेत था। दूसरे दिन तीस हजार। दिनोंदिन संख्या बढ़ती गयी। कलकत्ता की साम्प्रदायिक स्थिति सामान्य होती गयी, दंगे-फसाद का खतरा कम होता गया। अविश्वास का जो माहौल था, उसमें रचनात्मक तबदीली आयी।

'हैदरी हाऊस' में आक्रोशित लोगों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा था— आज आधी रात को हमलोग अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो जायेंगे लेकिन हिन्दुस्तान दो हिस्सों में बंट भी जायेगा। आज का दिन खुशी का दिन होने के साथ ही गम का दिन भी है। हिन्दुस्तान की आजादी ने हम सबों पर बड़ी जिम्मेदारी डाली है। *अगर कलकत्ता के लोगों ने समझदारी से काम लिया और हिन्दुओं और मुसलमानों ने भाईचारा को कायम रखा तो पूरे हिन्दुस्तान पर इसका*

असर पड़ेगा और वह बर्बादी से बच जायेगा। दुर्भाग्य से अगर हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक दंगों पर काबू नहीं पाया जा सका तो हम अपनी नई-नई मिली आजादी को नहीं बचा सकेंगे। गांधीजी की दिल से निकली आवाज का आक्रोशित भीड़ पर रचनात्मक असर हुआ और उनकी मौजूदगी से कलकत्ता की स्थिति में काफी बदलाव आया। 15 अगस्त 1947 को सबेरे हिन्दू और मुस्लिम लड़के-लड़कियों का एक बड़ा जुलूस आजादी मिलने की खुशी का इजहार करते *'जय हिन्द'* और *'महात्मा गांधी की जय'* के नारों के साथ गांधीजी के दर्शन के लिए 'हैदरी हाऊस' पहुंचा। वातावरण के सामान्य होने का यह संकेत था। दिन भर लोग जलूस की शक्ल में उनका आशीर्वाद लेने आते रहे।

सुहरवर्दी गांधी कैम्प के एक सदस्य बन चुके थे। शुरू में हिन्दुओं द्वारा उनका उग्र विरोध हुआ क्योंकि लोग उनको डाइरेक्ट एक्शन के नतीजे की बर्बादियों का जिम्मेदार मानते थे। लेकिन जब वह गांधीजी के साथ उनके बेलयाघट्टा निवास पर बगैर किसी अंगरक्षक और ताम-झाम के रहने लगे, गांधीजी के साथ विभिन्न इलाकों में रचनात्मक जन मानस बनाने की कोशिश में घूमने लगे, तो हिन्दुओं का आक्रोश धीमा पड़ा। अब न गांधीजी पर ईंट-पत्थर बरसते और न ही सुहरवर्दी की मुखालफत होती। 17 अगस्त को नरकुल डांगा में दोनों ने एक सभा को संबोधित किया। वहां एक लाख से ज्यादा लोग मौजूद थे और 'जय हिन्द' और 'गांधीजी की जय' के नारों से पूरा इलाका गूंज उठा था। जब पंजाब में हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को बेदर्दी से कत्ल कर रहे थे तो डाइरेक्ट एक्शन की बर्बादी झेला हुआ विदेशी लेखक किपलिंग की मान्यताओं का एशिया का सबसे खतरनाक शहर, दुनियां को शांति का संदेश दे रहा था।

अगले दिन ईद का त्यौहार था। तनावपूर्ण साम्प्रदायिक माहौल में खुले कलकत्ता मैदान में ईद की नमाज पढ़ी जायेगी या नहीं, नमाजियों पर दंगाई हमला तो नहीं कर देंगे, मुसलमान ही नहीं, शांतिप्रेमी हिन्दू और प्रशासन के बीच असमंजस की स्थिति थी। लेकिन गांधीजी की कलकत्ता में मौजूदगी ने अपना रचनात्मक प्रभाव बना लिया था। मुसलमानों ने बेखौफ कलकत्ता के मैदान में ईद की नमाज अदा की, यही नहीं एक दूसरे से डरने और शक की नजर से देखने वाले हिन्दू और मुसलमान सैकड़ों की तादाद में मुहल्ले-मुहल्ले घूमकर शांति संदेश देते, एक दूसरे से गले मिलते नजर आये। शाम में कलकत्ता मैदान की प्रार्थना सभा में पांच लाख से ज्यादा लोग मौजूद थे, खुशियों का माहौल था, लोक एक दूसरे को बधाई देते थक नहीं रहे थे। जब तक गांधीजी कलकत्ता में रहे, कलकत्ता और उसके आसपास विभिन्न जगहों पर गांधीजी की नियमित प्रार्थना सभाएं होती रहीं। उसमें शरीक होने वाले लोगों की संख्या हर दिन बढ़ती हुई दस लाख तक पहुंच गयी। हिन्दुस्तान ही नहीं पूरी दुनिया की चिन्ता भरी नजर गांधीजी की कलकत्ते के खतरों से भरे प्रयोगों पर लगी हुई थी। लिहाजा वहां उम्मीद से ज्यादा मिली कामयाबी को लोगों ने गांधीजी का चमत्कार माना और दुनिया भर से बधाई के सैकड़ों तार गांधीजी को मिले। कलकत्ता और बंगाल की सौहार्दपूर्ण परिस्थिति को देखते हुए पंजाब और उसके आसपास की स्थिति से मायूस लार्ड माउंटबेटन ने गांधीजी को कलकत्ता भेजने के अपने आग्रहपूर्ण निर्णय पर संतोष व्यक्त करते हुए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की और उन्हें 'वन मैन बाऊंड्री फोर्स' संबोधित करते हुए हार्दिक बधाई दी। ❑

(गांधी संग्रहालय, पटना, बिहार से सम्बद्ध)

सर्व सेवा संघ का 85वां अधिवेशन चम्पारण में

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) का 85वां अधिवेशन 25 मार्च, 2017 (शनिवार) को सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही की अध्यक्षता में *सुबह 10 बजे एम.एस. कॉलेज मोतीहारी (बिहार)* में होगा।

अधिवेशन के विचारणीय विषय

1. दिवंगतों को श्रद्धांजलि
2. दिल्ली अधिवेशन के कार्यवाही की पुष्टि
3. महामंत्री की रिपोर्ट
4. अध्यक्ष की अनुमति से अन्य विषय
5. सर्व सेवा संघ के अगले अध्यक्ष का निर्वाचन

कैसे पहुंचे : देश के अनेक भागों से 'बापूधाम मोतीहारी (रेलवे कोड-BMKI) की सीधी गाड़ियां हैं। यहां से मुजफ्फरपुर 83 किमी है। मुजफ्फरपुर के लिए राजधानी एक्सप्रेस सहित अनेक गाड़ियां उपलब्ध हैं। मुजफ्फरपुर से मोतीहारी के लिए अनेक गाड़ियां तथा बस उपलब्ध हैं। पटना से मोतीहारी की दूरी 155 किमी है। यहां से भी आधे घंटे के अंतराल पर बसें मिलती रहती हैं।

स्थानीय संपर्क : श्री विनय कुमार, मंत्री, पूर्वी चम्पारण जिला सर्वोदय मंडल, मो. : 9470775653/8521575300/7979008653, ई-मेल : vinaykumar91272@gmail.com

नोट : 1. अपने पहुंचने की निश्चित जानकारी सर्व सेवा संघ, प्रधान कार्यालय, महादेव भाई भवन, सेवाग्राम-442102, वर्धा (महाराष्ट्र), फोन नं. 07152-284061 एवं 284091, ई-मेल : sarvasevasangha@hotmail.com पर अवश्य दें, ताकि तद्नुसार व्यवस्था की जा सके।

2. ओढ़ने-बिछाने के कपड़े अपने साथ लायें।

3. अधिवेशन होली के थोड़े समय के बाद हो रहा है। अतः अंतिम समय की परेशानी से बचने के लिए अपना रेल आरक्षण तुरंत करवा लें।

विशेष सूचना : *दोपहर बाद 24 मार्च, 2017 को इसी स्थान पर सर्व सेवा संघ राष्ट्रीय कार्यसमिति* की बैठक होगी।

–शेख हुसेन, महामंत्री

प्रसंग

प्रपंच के सहारे हत्यारे का महिमामंडन

❑ के. विक्रम राव

''शराबप्रेमी आप्टे की अदालती रपट के अनुसार उसके जीवन की यादगार घटना थी 29 जनवरी, 1948 की रात, जो उसने पुरानी दिल्ली के वेश्यालय में गुजारी थी। अगली शाम को बापू की हत्या हुई।''
...''गोडसे और आप्टे को उनके हाथ पीछे बांधकर फांसी पर ले जाया गया, तो गोडसे लड़खड़ा रहा था। गला रुंधा था। भयग्रस्त और विक्षिप्त दिखा। आप्टे पीछे चल रहा था। माथे पर शिकन थी। दोनों आक्रांत लग रहे थे। ऐसे थे ये दोनों हीरो इतिहास के।''

शहादत दिवस पर बापू से जुड़े असंख्य वृत्तांत सहज ही याद आने लगते हैं। उन्हें दुहराने के बजाय गांधी-हत्या के अल्पज्ञात तथ्यों और मथ्यों को बताना और जताना राष्ट्रहित में होगा। पिछले दिनों हिन्दुओं के चंद स्वयंभू नायकों की भभकी और फुकार पर गौर करना होगा। खासकर इसलिए कि समय बीतते किंवदंतियां इतिहास का हिस्सा बन जाती हैं। झूठ की धूल सच को ढंक देती है।

पिछले वर्ष भाजपा के उन्नाव से सांसद सच्चिदानंद हरि साक्षी ने हत्यारे गोडसे को देशभक्त करार दिया। पार्टी से चेतावनी मिलने पर बिना शर्त माफी मांग ली। ये साक्षी महाराज वही हैं, जो पिछले दशक में लोहिया की पुण्यतिथि पर मुलायम सिंह यादव से 'आजीवन साथ निभाने' का एलान कर फिर भाजपा की गोद में जा पड़े। इनके आश्रम में एक युवती के कत्ल (15 अप्रैल, 2013) का आरोप लगा था। कथित आश्रम में वित्तीय घोटालों की चर्चा चली थी। मगर मोदी के बहाव में चले, सांसद बन गये।

यहां मुख्य बात हत्यारों के गिरोह और उसके सरगना नाथूराम विनायक गोडसे की है। गोडसे का नाम गांधी से जुड़ गया है। आखिर कैसा, कौन और क्या था नाथूराम विनायक गोडसे? क्या वह चिन्तक था, ख्यातिप्राप्त राजनेता था, हिन्दू महासभा का निर्वाचित पदाधिकारी था, स्वतंत्रता सेनानी था? सच्चाई यह है कि पुणे शहर के उसके पुराने मोहल्ले सदाशिव पेठ के बाहर उसे कोई जानता तक नहीं था, जबकि तब वह चालीस की आयु के समीप था।

नाथूराम स्कूल से भागा हुआ छात्र था। नूतन मराठी विद्यालय में मिडिल की परीक्षा फेल हो जाने पर उसने पढ़ाई छोड़ दी थी। उसका मराठी भाषा का ज्ञान बड़े निचले स्तर का था। अंग्रेजी का ज्ञान तो था ही नहीं। जीविका के लिए उसने सांगली शहर में दर्जी की दुकान खोली थी। उसके पहले वह बढ़ई का काम करता था। फलों का ठेला भी लगा चुका था। उसके पिता विनायक गोडसे कारखाने में बाबू थे, मासिक आय पांच रुपये थी। नाथूराम अपने पिता का लाडला पुत्र था, क्योंकि उसके पहले जन्मे सभी पुत्र मर गये थे। इसीलिए अंधविश्वास में माँ ने नाथूराम को बेटी की तरह पाला। नाक में नथ पहनायी, जिससे नाम नत्थूराम पड़ गया। उसकी आदतें और हरकतें भी औरतों जैसी हो गयीं। नाथूराम के बाद तीन पुत्र पैदा हुए थे, जिनमें गोपाल भी था, जो नाथूराम के साथ सह-अभियुक्त था।

नाथूराम की युवावस्था किसी खास घटना या विचार के लिए नहीं जानी जाती है। उस समय उसके हमउम्र लोग भारत में क्रांति की अलख जगा रहे थे। शहीद हो रहे थे। इस स्वाधीनता संग्राम की हलचल से नाथूराम को तनिक भी सरोकार नहीं था। अपने नगर पुणे में वह रोजी-रोटी के ही जुगाड़ में लगा रहा था। मई 1910 में जन्मे नाथूराम के जीवन की पहली खास घटना थी सितंबर 1944 की, जब हिन्दू महासभा नेता लक्ष्मण गणेश थत्ते ने सेवाग्राम में धरना दिया था।

उस दौर में महात्मा गांधी भारत विभाजन रोकने के लिए मोहम्मद अली जिन्ना से वार्ता करने मुम्बई जा रहे थे। चौंतीस वर्षीय अधेड़ नाथूराम उन प्रदर्शनकारियों में शरीक था। खंजर लेकर गोडसे बापू पर वार करना चाहता था। उसे आश्रमवासियों ने पकड़ लिया था। तब हम सभी भाई-बहन सेवाग्राम में रहते थे। लखनऊ जेल से रिहा होकर हमारे पिता संपादक के. रामाराव गांधीजी के साथ देश-विदेश के कई अंग्रेजी दैनिकों के विशेष संवाददाता थे। मैं पहली कक्षा का छात्र था। पिताजी बड़े विक्षिप्त-से घर आये। गोडसे की हरकत बतायी।

गोडसे के जीवन की दूसरी घटना थी एक वर्ष बाद, जब ब्रिटिश वायसराय ने भारत की स्वतंत्रता पर चर्चा के लिए राजनेताओं को शिमला आमंत्रित किया था। तब नाथूराम पुणे की किसी अनजान पत्रिका के संवाददाता के रूप में वहां उपस्थित था। *जो लोग नाथूराम गोडसे को प्रशंसा का पात्र समझते हैं, उन्हें खासकर याद रखना होगा कि गांधीजी की हत्या के बाद जब नाथूराम के पुणे आवास और मुम्बई के उसके मित्रों के घर पर छापे पड़े, तो मारक अस्त्रों का भंडार पकड़ा गया था, जिसे उसने हैदराबाद के निजाम पर हमला करने के नाम पर बटोरा था। यह दीगर बात है कि इन असलहों का प्रयोग कभी नहीं किया गया।*

मुम्बई और पुणे के व्यापारियों से अपने हिन्दू राष्ट्र संगठन के नाम पर नाथूराम के अकूत धन वसूला था, जिसका कभी लेखा-जोखा तक नहीं दिया गया। बारीकी से परीक्षण पर निष्कर्ष यही निकलता है कि कतिपय हिन्दू उग्रवादियों द्वारा नाथूराम भाड़े पर रखा गया हत्यारा था। जेल में उसकी चिकित्सा रपटों से ज्ञात होता है कि उसका मस्तिष्क अधसीसी के रोग से ग्रस्त था। यह

अड़तीस वर्षीय बेरोजगार, अविवाहित और दिमागी बीमारी से ग्रस्त नाथूराम किसी रूप से मामूली मनःस्थिति वाला व्यक्ति नहीं हो सकता। उसने गांधी की हत्या का पहला प्रयास 20 जनवरी, 1948 को किया था। उसने सहअभियुक्त मदनलाल पाहवा से मिलकर नयी दिल्ली के बिड़ला भवन पर बम फेंका था, जहां गांधीजी प्रार्थना-सभा कर रहे थे। बम का निशाना चुक गया। पाहवा पकड़ा गया, मगर नाथूराम भाग कर मुम्बई में छिप गया।

दस दिन बाद अपने अधूरे काम को पूरा करने वह दिल्ली आया। *30 जनवरी की संध्या की एक घटना से साबित होता है कि नाथूराम कितना धर्मनिष्ठ हिन्दू था! हत्या के लिए तीन गोलियां दागने के पहले, वह गांधीजी की राह रोककर खड़ा हो गया था। पोती मनु ने नाथूराम को हटने के लिए आग्रह किया, क्योंकि गांधीजी को प्रार्थना के लिए देरी हो गयी थी।*

इस धक्का-मुक्की में मनु के हाथ से पूजा वाली माला और आश्रम भजनावली जमीन पर गिर गयीं। उन्हें रौंदता हुआ नाथूराम आगे बढ़ा, पिछली सदी का जघन्यतम अपराध करने।

जो लोग अभी भी नाथूराम गोडसे के प्रति थोड़ी नरमी बरतते हैं, उन्हें उस क्रूर हत्यारे के बारे में एक प्रमाणित तथ्य पर गौर करना चाहिए। गांधीजी को मारने के दो सप्ताह पूर्व नाथूराम ने अपने जीवन को काफी बड़ी राशि के लिए बीमा कंपनी से सुरक्षित करा लिया था। उसकी मौत के बाद उसके परिजन इस बीमा राशि से लाभान्वित होते। एक कथित 'मिशन' को लेकर चलने वाला व्यक्ति बीमा कंपनी से हरजाना कमाना चाहता था। नाथूराम ने जेल के भीतर सुविधाओं की मांग भी की थी, हालांकि उसे स्नातक और पर्याप्त शिक्षित न होने के कारण पंजाब जेल नियम संहिता के अनुसार साधारण कैदी की तरह रखा जाना था।

अपने *मृत्युदंड* के निर्णय के खिलाफ नाथूराम ने लंदन की *प्रिवी काउंसिल* में अपील की थी, जबकि भारत स्वाधीन हो चुका था। वह अपील *'कंगाल अधिनियम'* के तहत दायर की गयी थी, जो निर्धन, असहाय अपराधी कानूनी मदद पाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। जजों ने उसे, जाहिर है, अस्वीकार कर दिया था। उसके भाई गोपाल गोडसे ने जेल में हर गांधी जयंती में बढ़-चढ़कर शिरकत की, क्योंकि जेल नियम में ऐसा करने पर सजा की अवधि में छूट मिलती है। गोपाल पूरी सजा की अवधि के पहले ही रिहाई पा गया था।

नाथूराम गोडसे के साथ जिसे फांसी दी गयी थी, वह था *नारायण आप्टे,* उसका निकटतम मित्र और सहधर्मी। ब्रिटिश वायुसेना में नौकर आप्टे पहले गणित काअध्यापक था और एक ईसाई छात्रा मनोरमा सालवी को कुंवारी मां बनाकर छोड़ गया। हालांकि उसकी पत्नी और विकलांग पुत्र भी थे। *शराबप्रेमी आप्टे की अदालती रपट के अनुसार उसके जीवन की यादगार घटना थी 29 जनवरी, 1948 की रात, जो उसने पुरानी दिल्ली के वेश्यालय में गुजारी थी। अगली शाम को बापू की हत्या हुई।*

तीसरा अभियुक्त *विष्णु रामकृष्ण करकरे शस्त्रों का तस्कर* था। अनाथालय में परवरिश पायी। चाय की दुकान खोली। गोडसे से हिन्दू महासभा के कार्यालय में परिचय हुआ। राष्ट्रवाद का दम भरने लगा। पुलिस की पकड़ से बच जाता, अगर वह समीपस्थ पुर्तगाली उपनिवेश गोवा में घुसने में सफल हो जाता। भाग नहीं पाया। दिगंबर रामचंद्र वडगे, जो सरकारी गवाह बना और क्षमा पा गया, पुणे में शस्त्र भंडार नामक दुकान चलाता था। नाटे, सांवले, भैंगी दृष्टि वाले वडगे ने विनायक दामोदर सावरकर को हत्या की साजिश का सूत्रधार बताया था। पर पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में सावरकर रिहा हो गये थे।

तब विभाजन और पाकिस्तान के पंजाब और सिंध से भागकर आये हिन्दू शरणार्थी हिन्दू उग्रवादियों के लिए बारूद बन रहे थे। जनमत भी मुसलमानों के विरुद्ध था। बस चिनगारी लगाने वाला चाहिए था। *उस समय दिग्भ्रमित सोशलिस्ट भी सरदार पटेल को हिन्दू उग्रवादियों का पोषक मान रहे थे। वह दौर था जब नेहरू और इन सोशलिस्टों में निकट का रिश्ता था। हालांकि दो दशक बाद लोकनायक जयप्रकाश नारायण और डॉ. राममनोहर लोहिया ने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया था कि पटेल का विरोध करना और नेहरू का पक्ष लेना एक ऐतिहासिक भूल थी।*

कुछ सिरफिरे लोग नाथूराम गोडसे को उच्चकोटि का चिन्तक, ऐतिहासिक मिशन वाला व्यक्ति बनाकर पेश करते हैं। उनके तर्क का आधार नाथूराम का वह दस-पृष्ठीय वक्तव्य है, जिसे उसने बड़े युक्तिसंगत, भवना भरे शब्दों में लिखकर अदालत में पढ़ा था कि उसने गांधीजी को क्यों मारा? इस बयान में गोडसे ने दो झूठ कहे थे।

पहला यह कि गांधीजी गोवध बंदी के विरुद्ध थे। इसका संदर्भ था, जब भारतीय मुसलमानों के खिलाफत आंदोलन का गांधीजी ने समर्थन किया था, ताकि तुर्की के खलीफा का सम्मान बना रहे। तब मुस्लिम नेताओं ने प्रस्ताव रखा था कि अखिल भारतीय खिलाफत समिति मुसलमानों से गोवध बंद करने की अपील करेगी। गांधीजी ने कहा कि ऐसी बात करना सौदेबाजी जैसी हो जायेगी। इसलिए खिलाफत आंदोलन की समाप्ति पर गोवध बंदी पर समझौता संभव है।

दूसरा झूठ गोडसे ने कहा था कि गांधीजी राष्ट्रभाषा के पक्षधर नहीं हैं। बापू ने ही भारत में अंग्रेजी हटाने और हिन्दी लाने का अभियान चलाया था। बैरिस्टर गांधी का मशहूर बयान था कि, *'दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।'*

फांसी के दिन (15 नवंबर, 1949) अम्बाला जेल का आंखों देखा हाल *न्यायमूर्ति जी डी खोसला* ने अपने संस्मरणों में लिखा है। *गोडसे* और *आप्टे* को उनके हाथ पीछे बांधकर फांसी पर ले जाया गया, तो *गोडसे* लड़खड़ा रहा था। गला रुंधा था। भयग्रस्त और विक्षिप्त दिखा। आप्टे पीछे चल रहा था। माथे पर शिकन थी। दोनों आक्रांत लग रहे थे। ऐसे थे ये दोनों हीरो इतिहास के।

('जनसत्ता' से साभार) ❑

गांधी समाधि पर नंगे पांव

❑ अलबर्ट कामू

सन् 1955 शीतयुद्ध और परमाणु होड़ का उत्कर्ष काल था। उसी दौरान सोवियत संघ के दो सबसे ताकतवर नेता राष्ट्रध्यक्ष मार्शल निकोलई बुल्गानिन और प्रधानमंत्री निकीता ख्रुश्चेव भारत यात्रा पर आये और उन्होंने महात्मा गांधी की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित की। युद्ध व हिंसा की पैरोकारी करने वाले इन दोनों का गांधी-समाधि पहुंचना सारी दुनिया को आश्चर्यचकित कर गया था। फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक, दार्शनिक पत्रकार एवं नोबल पुरस्कार विजेता अलबर्ट कामू ने 22 नवंबर 1955 को पेरिस के 'ला एक्सप्रेस' में यह महत्त्वपूर्ण लेख लिखा था। आज कई दशक पश्चात भी यह लेख सभी सत्ता प्रतिष्ठानों के लिए एक चुनौती है। **–सं.**

''हम सब मिल-जुलकर एक सार्वजनिक तीर्थयात्रा की कामना करेंगे। ऐसी यात्रा जिसके दौरान हमारे तरह-तरह के सत्ताधारी लोग, साथ ही उनके दार्शनिक और विदूषक भी, हमारे समय के उस सबसे महान व्यक्ति से क्षमा मांगेंगे क्योंकि उन्होंने बारंबार गांधी का अपमान किया है, सालों-साल उन्होंने निर्लज्जता के साथ अपने हिंसक कर्मों को, अपने युद्धों को शांति के घोषणापत्रों से ढका है।''

यह गजब का सौभाग्य है कि इतनी रोमांचक सदी में मेरा जन्म हुआ। कृतज्ञता के ऐसे भाव मेरे मन में तब उठे जब मुझे एक खबर पढ़ने को मिली थी कि सर्वश्री ख्रुश्चेव और बुल्गानिन अपने जूते उतार कर, केवल मोजे पहने गांधी-समाधि पर फूल चढ़ाने पहुंचे। मैं ऐसा कभी सपने में भी सोच नहीं सकता था! सर्वशक्तिमान मार्शल और उनके प्रधानमंत्री ने एक योगी का सम्मान करने के लिए अपने जूते निकाले। पर ऐसा ही हुआ! सच में ऐसा ही हुआ। पूरी दुनिया अचरज से देखती रही। दो सौ बख्तरबंद फौजी डिवीजनों और एक फौलादी शासन प्रणाली के ताकतवर मुखिया अहिंसा के एक महान पुजारी का सम्मान करने पहुंच गये।

सही है, इस तरह की श्रद्धांजलि देने से किसी का कुछ घटता-बढ़ता नहीं है। यह भी सही है कि कूटनीति की तिकड़म में प्रवीण महान लोगों को अपने मोजे उतारने में तब कोई झिझक नहीं होती जब उसका फायदा एकदम साफ दिख रहा हो। चाहे फिर इसके लिए उन्हें अपने सुंदर, जरीदार जूतों पर फिसलकर गिरने की नौबत ही क्यों न आना पड़े, अगर कोई गांधी उनसे सही में मिलने आ जाये।

इस घटना विशेष में एक नाटकीय अंतर्विरोध था। यह साधारण घटना नहीं थी। राजघाट का फूल और सम्मान अर्पित करना इन नेताओं के लिए कतई आसान नहीं था। खासकर उस गांधी के सम्मान में, जिसे सोवियत विश्वकोश सालों-साल ब्रिटिश साम्राज्यवाद का एजेंट बताता आया है। सोवियत प्रचार-तंत्र गांधी को एक ऐसा कुटिल नेता बताता रहा है, जो लोगों की भावनाएं भड़का कर अपने लिए राजनीतिक समर्थन जुटाता है। कितना कठिन रहा होगा ऐसे प्रचार-तंत्र के शीर्ष पर बैठे इन सेनाधिपतियों के लिए अपने जूते उतार उनकी समाधि पर फूल चढ़ाना!

सोवियत संघ के संस्थापक लेनिन और गांधी के बीच मतभेद गहरे और मूलभूत हैं। ऐसा नहीं था कि गांधी किसी भी मायने में लेनिन से कम यथार्थवादी थे। गांधी मानते थे कि हिंसा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह हिंसक व्यक्ति को दबोच कर रखती है। ऐसे व्यक्ति का मानस हत्या के उपाय ढूंढ़ता है, अपनी मौलिकता नहीं खोजता है और आखिरकार उसकी हिंसा प्रभावहीन हो जाती है।

क्या गांधी के इस सत्व को सोवियत सरकारें लगातार गांधी का सबसे बड़ा दुर्गुण नहीं बताती आ रही हैं? गांधी का विरोध इसलिए नहीं होता था कि वे अहिंसा का सबक सिखाते थे। नहीं, सोवियत संघ गांधी को उलाहना इसलिए देता था क्योंकि उन्होंने बिना किसी की हत्या किये 40 करोड़ लोगों के देश को आजाद करवा दिया था। जिसे उन्होंने यथार्थ बताया था, वह आखिर में सिद्ध हो गया? क्या गांधी के इस अपराध के कभी माफ किया जा सकता है! सोवियत वाले यथार्थ पर अपना एकाधिकार जो मानते हैं।

चाहे कुछ भी हो, लगातार गांधी का मजाक उड़ाने और उन्हें उलाहना देने के बाद, आखिरकार क्रेमलिन के नेताओं ने इस महान यथार्थवादी सबक को सलाम कर ही लिया। अब चाहे जो उलट-पलट होती हो सो हो, चाहे जनता कितनी भी सहनशील बनी रहे और राज करने वालों के पाप भूल जाए, कुछ बातें तो अब निश्चित है। अब कुछ अनैतिक बातें करना उतना आसान नहीं होगा, क्योंकि उसके विरोध का भाव गांधी के काम की वजह से जगह-जगह फैल गया है।

जब सत्तावान लोग अनैतिक बातें करेंगे, गांधी एक बार फिर सामने आ जायेंगे। उन्होंने सिखाया ही है कि संवाद करना, लगातार संवाद करना भी एक कर्म है, जिससे इतिहास रचा जा सकता है। जरूरी यह है कि व्यक्ति अपनी बातें और अपने जीवन में इतनी एकरूपता ले आये कि वह आजीवन टूटे नहीं। गांधी कहते थे कि सत्य का आग्रह, सौम्यता की मजबूती और शांति की शक्ति ही हिंसा की शातिर हठधर्मिता को जीत सकता है। गांधी की इस बात का साक्ष्य लाखों लोगों ने पिछले दस साल से लगातार दिया है, अंग्रेज सरकार की गोलियों का सामना करके भी।

ये दोनों सत्ताधीश अब एक कदम और आगे बढ़ा सकते हैं, अपने आपको राजघाट के लायक सिद्ध करने के लिए। उदाहरण के लिए खुश्चेव साहब ने भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से कहा कि कोई भी दो सही मायनों में स्वतंत्र तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके पास अपने उद्योग न हों। गांधी उनकी इस वाजिब बात से एकदम सहमत होते। गांधी ने चरखे के माध्यम से दिखलाया था कि अगर आजादी के साथ रहना हो, तो अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए किसी और पर निर्भर रहा नहीं जा सकता। परंतु खुश्चेव साहब की बात सुनकर गांधी उन्हें टोकते जरूर कि औद्योगिक आत्मनिर्भरता ही आजादी के लिए पर्याप्त नहीं है। उसके लिए कुछ और भी आत्मनिर्भरताएं चाहिए। गांधी जरूर दिखलाते उस दूरी को जो मार्क्सवाद के अर्धसत्यों को उस विचार से अलग करती है जो यथार्थ है, सत्य है, और व्यापक है।

लेकिन हमें बहुत ज्यादा ही अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अगर उस विनम्र समाधि से विवेक की एक सांस भी हमारे पश्चात्ताप करने वाले अधिकारियों को उस दिन मिली हो, तो यह हमारे लिए आनंद का विषय होगा। चाहे वह अनुभूति एक क्षण भर की ही क्यों न हो, वह उन दो शक्तिशाली शासकों को रूस के साधारण लोगों की शाश्वत और असली महानता से परिचित करायेगी। अगर हमारी ऐसी अभिलाषाएं एक-दूसरे से जुड़ पायी, तो हम सब मिल-जुलकर एक सार्वजनिक तीर्थयात्रा की कामना करेंगे। ऐसी यात्रा जिसके दौरान हमारे तरह-तरह के सत्ताधारी लोग, साथ ही उनके दार्शनिक और विदूषक भी, हमारे समय के उस सबसे महान व्यक्ति से क्षमा मांगेंगे क्योंकि उन्होंने बारंबार गांधी का अपमान किया है, सालों-साल उन्होंने निर्लज्जता के साथ अपने हिंसक कर्मों को, अपने युद्धों को शांति के घोषणापत्रों से ढका है। ❑

ट्रस्टीशिप यानी भरत राज्य

❑ **किशन गोरडिया**

दशरथ राजा की मृत्यु को चौदह दिन हो चुके थे। अयोध्या का सिंहासन अब इतने लंबे समय तक खाली रखना योग्य नहीं है, ऐसा विचार मन में आते ही गुरुवर्य वसिष्ठ और अन्य वरिष्ठ मंत्रियों ने राजकुमार भरत को राजसभा में आमंत्रित किया। सभा में यह निर्णय सर्वसम्मति से किया गया कि वर्तमान परिस्थिति में अयोध्या के राजा के रूप में भरत का राज्याभिषेक होना ही योग्य है। इस पर भरत ने अत्यन्त भावुकर होकर कहा, ''मैं राजसभा के निर्णय का आदर करता हूं। मुझे पता है कि हमारा धर्म कहता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात सिंहासन पर बैठने का अधिकार केवल ज्येष्ठ राजपुत्र का ही होता है। ऐसा नियम होने के पश्चात क्या मेरा राज्याभिषेक करवा कर सिंहासन पर बैठना धर्म का घोर अपमान नहीं होगा? यह राज्य केवल श्रीराम का है। वे इन दिनों वनवास में हैं और मैं सिंहासन स्वीकार करूं, तो मेरी दृष्टि में यह पापकर्म होगा। मैंने यह निर्णय किया है कि मेरे प्रिय बंधु श्रीराम जहां कहीं होंगे मैं उन्हें वहां से वापस ले आऊंगा, आप लोग मुझे आशीर्वाद दें।''

स्वयं अपने पैरों से चलकर आए राज्य को नकारने वाले भरत का निश्चय देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गये। उनकी तत्त्वनिष्ठा और बंधुप्रेम को स्वीकार कर उपस्थित सभासदों ने उनके निर्णय को और बल दिया। सेनापतियों और सेना के साथ भरत स्वयं श्रीराम की खोज में गंगा नदी पार कर दक्षिण दिशा की ओर निकल पड़े। श्रीराम, लक्ष्मण, सीता चित्रकूट पर्वत पर हैं यह संदेश उन्हें ऋषि भरद्वाज से मिल चुका था। सैन्यदल चित्रकूट पर्वत पर पहुंच गया और श्रीराम-भरत की प्रत्यक्ष भेंट हुई। अयोध्या में हुई दुःखद घटना के बारे में उन्होंने श्रीराम को बताया, पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर श्रीराम भी अतिशय दुःखी हुए।

दुःख से उबरकर भरत ने श्रीराम से कहा, ''मेरी मां के स्वार्थीपन के कारण आज आप पर यह दुःखद स्थिति आयी है। राजा के बिना अनाथ हुई अयोध्या की जनता के लिए अब केवल एक ही आशा शेष रह गयी है और वह हैं श्रीराम। मैंने आपके राज्याभिषेक की सभी तैयारियां कर ली हैं। अयोध्या के सर्वेसर्वा के रूप में आप अयोध्या वापस चलें।''

श्रीराम अपने निर्णय से तनिक भी पीछे नहीं हुए थे। उन्होंने कहा, ''बालक भरत, मृत्यु से पहले पिता को जो वचन दिया था उससे मुंह मोड़ना तो अधर्म होगा। पुत्र के रूप में अपने स्वर्गवासी पिता का वचन पूर्ण करना ही हमारा पहला कर्तव्य है। एक पुत्र को वनवास और दूसरे पुत्र को राज्याभिषेक, इस वचन में अब कोई भी परिवर्तन होना सम्भव ही नहीं है। श्रीराम का आग्रह देखकर भरत ने कहा, ''ऐसा है तो फिर मैं यह वनवास भोगने के लिए आनन्दपूर्वक तैयार हूं। आप अयोध्या के राजा के रूप में वापस आइए।''

अब इस बार श्रीराम क्या उत्तर देंगे यह सभी लोग उत्सुकतापूर्वक देखने लगे। श्रीराम ने कहा, ''नहीं भरत, अपनी इच्छा से वचन में परिवर्तन करने का अधिकार तुम्हें और मुझे नहीं है। राजपुत्र के रूप में हम जनता के सामने क्या आदर्श रखेंगे? नहीं, मैं वनवास में रहूंगा और तुम अयोध्या का साम्राज्य संभालोगे और यह वचन हमारे पूज्य पिताजी ने माता कैकेयी को दिया है। यही और इतनी ही सत्य है।'' अब भरत का धैर्य टूट गया

और उन्होंने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा, ''यदि श्रीराम अयोध्या वापस नहीं आयेंगे, तो मैं अन्न-जल त्याग कर मृत्यु स्वीकार कर लूंगा।'' भरत द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम व्यथित हो गये। उन्होंने भरत से कह दिया कि इस प्रकार अपना हठ पूरा करने के लिए अन्न-जल त्यागना किसी पराक्रमी राजपुत्र को बिलकुल भी शोभा नहीं देता। भरत ने उसके उपरांत अपना निर्णय छोड़ तो दिया, लेकिन उनके मन की उलझनें नहीं छूटीं।

अंत में श्रीराम ने भरत को अपने निकट ले लिया और उसे बड़े विनम्र स्वर में समझाने लगे, ''भरत, तुम्हारा यह निःस्वार्थ प्रेम देखकर मैं सचमुच भाव-विभोर हो गया हूं। लेकिन यह समय भावुक होने का नहीं है। जिस तरह से पिता का वचन पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है उसी तरह अयोध्या के साम्राज्य की रक्षा करना भी हमारा कर्तव्य है। प्रिय बंधु, मेरा वनवास अनंत काल के लिए नहीं है, यह तो केवल चौदह वर्षों के लिए है। चौदह वर्ष पूर्ण होते ही मैं लौट हाऊंगा और अयोध्या के राजा के रूप में आनंद से राज्य करूंगा, यह मेरा वचन है। तुम गुणी हो, तत्त्वनिष्ठ हो। मुझे पूरा विश्वास है कि अयोध्या तुम्हारे हाथों में पूरी तरह से सुरक्षित रहेगी। अब हठ त्याग दो और अयोध्या लौट जाओ तथा राज्य के कामकाज का कर्तव्य निभाओ। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।''

अपने ज्येष्ठ बंधु के हृदय से निकले उद्‌गार सुनकर भरत विचार में पड़ गये। श्रीराम अपने निश्चय से हटेंगे नहीं यह भरत को पता चल चुका था। मन में एक विचार कर वे श्रीराम के सामने जाकर खड़े हो गये और कहने लगे, ''ठीक है, आपकी आज्ञा समझकर मैं अयोध्या का राज्य स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। परंतु आप केवल मेरी एक इच्छा पूर्ण कीजिए।''

भरत का निर्णय सुनकर आनंदित हुए राम ने पूछा, ''कौन-सी इच्छा?''

''अयोध्या का राज्य श्रीराम का राज्य ही रहेगा। मैं राजचिह्न के रूप में आपकी पादुकाएं अयोध्या ले जाने की अनुमति चाहूंगा। आपने अपना साम्राज्य मुझे अपना विश्वस्त मानकर अगले चौदह वर्षों के लिए मेरे हाथों में सौंपा है। गुरुवर वसिष्ठ व अन्य गुरुजनों तथा अन्य जानकार मुंत्रियों की सहायता से मैं यह कर्तव्य पूरा करूंगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए।''

भरत की यह मांग सुनकर उपस्थित सभी लोग भावुक हो गये। श्रीराम ने अपनी पादुकाएं उतार कर भरत के हाथों में सौंप दीं। भरत ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक श्रीराम की पादुकाएं अपने सिर पर रखीं और सभी ज्येष्ठ जनों का आशीर्वाद लेकर भारी और उदास मन से अयोध्या के लिए चल पड़े।

हमें लगता है कि रामायण में भरत की भूमिका इस प्रसंग के बाद समाप्त हो गयी। लेकिन सच यह है कि अयोध्या आने के बाद ही भरत की वास्तविक भूमिका का आरम्भ हुआ। भरत अब तक हमारे सामने किसी के पुत्र, किसी के भाई के रूप में आते हैं, तो वे अयोध्या के विश्वस्त के रूप में सामने आते हैं। अत्यन्त निष्ठा के साथ चौदह वर्षों तक साम्राज्य का कर्तव्य निभाने वाले प्रशासक के रूप में हमारे सामने आते हैं।

क्या चौदह वर्षों की कालावधि में एक बार भी भरत के मन में सिंहासन पर बैठने का मोह नहीं जागा? क्या उन्हें ऐसा नहीं अनुभव हुआ कि साम्राज्य के अधिपति होने के रूप में वे सत्ता का उपभोग करें? क्या उन्हें यह विचार नहीं आया कि राजा के रूप में मिले अधिकार और ऐश्वर्य का आनंद वे लूटें और सुख से रहें? इन सारे प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक ही हैं अर्थात नहीं। पिता की मृत्यु के बाद भी यह राज्य यदि उन्हें मिल जाये तब भी मैं इस राज्य का स्वामी नहीं हूं। यह भावना भरत के मन में अत्यन्त स्पष्ट रूप से बसी हुई थी। अपनी इस भावना को मूर्त स्वरूप देने के लिए उन्होंने श्रीराम की पादुकाओं की सिंहासन पर प्रतिष्ठापना की। ज्येष्ठ बंधु वनवास भोग रहे हैं, अतः राजमहल, अमूल्य वस्त्र, सुग्रास अन्न आदि का आनंद लेना पाप है, इस भावना के कारण उन्होंने विचारपूर्वक अतिशय साधारण जीवन व्यतीत करने का निर्णय किया। श्रीराम के चौदह वर्षों बाद वनवास से लौटने तक उन्होंने अयोध्या के पास ही नंदिग्राम नामक एक छोटे-से गांव में एक पर्णकुटी में फल-कंदमूल खाकर समय बिताया। भरत ने अयोध्या का राज्य अत्यन्त कुशलता से संभाला। साम्राज्य का विस्तार गांधार और तक्षशिला तक बढ़ाया। धन-धान्य उत्पादन और खनिज में दस गुना वृद्धि की।

जब विद्वानों ने विचार किया तो पाया कि भरत द्वारा चलाया गया प्रशासन लोकतंत्र के आधार पर चलाया गया था। इसमें यह सूत्र भी दिखायी देता है कि राज्य की अपेक्षा जनता सार्वभौम होती है। लोकतंत्र में जनता के हित में निर्णय लेकर राज्य कार्यभार चलाने का कर्तव्य राजा के हाथों में सौंपा जाता है और सही अर्थों में जनता स्वामी और राज्यकर्ता उसका विश्वस्त होता है। किसी भी बात या सम्पत्ति पर किसी भी तरह की अधिकार भावना न जताते हुए जो जनता का कोई कार्य पूरी कर्तव्यपरायणता और विश्वास के साथ संभालता है वही विश्वस्त कहलाता है। भरत ने बिलकुल यही किया। 'अयोध्या का राज्य श्रीराम का अधिकार है, उनकी पादुकाएं उनके अधिकारों का प्रतीक हैं, मैं केवल उनका विश्वस्त' हूं, इस भावना के साथ भरत अंत तक प्रामाणिक रहे। सत्ता के मोह और अहंभाव को दूर रखकर राज्य सेवा हमारा कर्तव्य है ऐसा मानकर विश्वस्त की भूमिका के रूप में चलाया जाने वाला राज्य ही 'भरतराज्य' कहलाता है। इसे हम गांधी का ट्रस्टीशिप कह सकते हैं। ❑

दोराहे पर खड़ा भारतीय समाज

❑ अजीत साही

16वीं सदी में मार्टिन लूथर नाम से एक यूरोपियन पादरी ने कैथोलिक चर्च से बगावत कर दी। उस समय 1500 वर्ष पुराने ईसाई धर्म में कट्टरता चरम पर थी; सिर्फ चर्चा को बाइबिल समझने-समझाने का हक था। अंधविश्वास का बोलबाला था। चर्च की मुखालफत करने वालों को मौत मिलती थी। यूरोप के इस दौर को इतिहास का डार्क एज कहते हैं। लूथर की ललकार ने ईसाई धर्म पर कैथोलिक चर्च के एकाधिकार को खत्म कर सुधारवादी प्रोटेस्टेंट धर्म को जन्म दिया। इस वैचारिक आजादी के कारण सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में एन्लाइटन्मेंट एज (प्रबोधन काल) आया।

यूरोप के प्रबोधन काल के दौरान तर्कसंगत दर्शन और विज्ञान, सर्वशिक्षा, सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता का जन्म हुआ। मानवीय अधिकारों पर बहस छिड़ी। बीसवीं सदी में यूरोप और अमेरिका की आर्थिक प्रगति की नींव पड़ी। ये उपलब्धियां आज दुनियाभर में उन्नति के मापदण्ड हैं।

इसी तरह उन्नीसवीं सदी में भारत का हिन्दू धर्म भी कुरीतियों में लिप्त था। राजशाही की अर्थसत्ता सवर्णों के हाथ में थी। सिर्फ ब्राह्मण धार्मिक अनुष्ठान कर सकते थे। मैला उठाने वाले अछूतों का जीवन नर्क था। बेगारी और बेदखली आ गयी। अंधविश्वास का जोर था। किसी को भी अधर्मी बताकर समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। महिलाओं को सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिलता था। विधवा जीवन अपशकुन था। सती हो जाना बेहतर माना जाता था। 18वीं शताब्दी के अंत में अंग्रेजों द्वारा जमींदारी कायम करने के बाद किसानों का शोषण हद पार कर गया था। इस तरह दरिद्रता में व्यापक विस्तार हुआ।

ऐसे दमन के विरोध में 19वीं शताब्दी में सुधारवाद ने जोर पकड़ा। राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों ने अनैतिक परम्पराओं को चुनौती दी। विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। सती प्रथा एवं बाल विवाह का विरोध बढ़ा।

मोहनदास करमचन्द गांधी पहले ऐसे सुधारक थे, जिन्होंने कहा कि हिन्दू धर्म समाज की इन बुराइयों की वजह से भारत अंग्रेजी हुकूमत के पराधीन हो गया। इस दर्शन को 1909 में गांधी ने अपनी पहली पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' की शक्ल दी। अपने तमाम अखबारों, किताबों, लेखों, भाषणों और साक्षात्कारों में गांधी मरते दम तक हिन्दू धर्म में व्यापक सुधार के हिमायती थे। अस्पृश्यता के विरोध में गांधी ने मैला उठाना शुरू किया। शूद्र कहे जाने को हरिजन का नाम दिया और मंदिर में उनके प्रवेश पर लगी पाबंदी के विरोध में अनशन करके मंदिरों के दरवाजे खुलवाये। अपने आश्रम में गांधी ने छुआछूत पर प्रतिबंध लगा दिया। खुद को काश्तकार और हरिजन करना शुरू किया और भारत में घूम-घूमकर किसानों के बीच स्वतंत्रता संग्राम का जज्बा जगाया। सर्वधर्म समभाव को हिन्दू धर्म का आधारभूत बताते हुए गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा बुलंद किया। गांधी की परिकल्पना के स्वतंत्र भारत में धर्म, जाति, वर्ग और लिंग पर आधारित भेदभाव के लिए जगह नहीं थी। आबादी में हिन्दुओं के बहुमत के बावजूद स्वतंत्र भारत को धर्मनिरपेक्ष रखने की ताकीद दी।

लूथर के दौर में पुरातनवादियों के विरोध की तरह हिन्दू समाज के सत्ताधारी वर्ग भी गांधी के सुधारों के डर से स्वतंत्रता-विरोधी अंग्रेजी हुकूमत और उसकी पिट्ठू रियासतों से लामबंद रहे। 1914 में स्थापित हिन्दू महासभा और 1925 में बना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ गांधी के सुधारवादी दर्शन के धुर विरोधी के रूप में उभरे। सवर्ण नेतृत्व में इन संगठनों की विचारधारा पुरातन एवं प्रतिक्रियावादी थी।

30 जनवरी, 1948 को गांधी की हत्या करने वाला नाथूराम गोडसे दोनों संगठनों का सदस्य रह चुका था। महात्मा गांधी के विराट दर्शन के चलते ही आजाद भारत में मानवीय अधिकारों, धर्म-निरपेक्षता और समानता को कानूनी संरक्षण मिला, और अस्पृश्यता, भेदभाव, बेगारी और जमींदारी को गैरकानूनी ठहराया गया। लेकिन ऐसा नहीं है कि भारत से या हिन्दू समाज से शोषक वर्ग का अंत हो गया है। नये दौर में शोषण के नये आयाम कायम हो गये हैं, जिनके चलते देश में अप्रत्याशित गरीबी पनप गयी है। कर्ज में डूबे लाखों किसान आत्महत्या कर चुके हैं। करोड़ों लोग अपनी खेत-जमीन से बेदखल किये जा चुके हैं। कई जगह लोगों ने सरकार और सुरक्षा बलों के खिलाफ बंदूक उठा ली है। यही नहीं, पिछले साल संघ से जुड़ी भरतीय जनता पार्टी के चुनाव जीतकर सत्ता हासिल करने के बाद भारत में मजहबी अल्पसंख्यकों में अपनी सुरक्षा को लेकर संशय बढ़ गया है। आर. एस. एस. की सोच में भारत के मुसलमानों का दर्जा हिन्दुओं से नीचे है। भाजपा की जीत से निश्चित ही संघ की गांधी-विरोधी विचारधारा को शह मिली है; यही वजह है कि आज गांधी के हत्यारे गोडसे के प्रति रुचि जागृत होती दिख रही है। हिन्दू महासभा के कुछ सदस्यों ने गोडसे का मंदिर बनाने का एलान किया है।

आज भारतीय समाज एक बार फिर दोराहे पर खड़ा है। एक रास्ता गांधी की ओजस्विता और उनके न्यायसंगत दर्शन का है, दूसरा भारत के 19वीं शताब्दी के डार्कएज में वापस पहुंचाए जाने का।

('बी.बी.सी. हिन्दी.कॉम' से साभार) ❑

श्रद्धांजलि

ऐसा मनुष्य कभी मरता नहीं।

❑ प्यारेलाल

वह जीवित रहता है,
जाग्रत रहता है–मरती है मृत्यु,
वह नहीं मरता।
जीता है नित्य वह
और जागता भी वही है,
होती है मृत्यु मृत्यु की ही,
ऐसा व्यक्ति कभी भी मरता नहीं!
प्रत्येक व्यक्ति को–
स्वकर्म अथवा राजमुकुट,
जो भी न्यायोचित होता है,
दे देता है विधाता तौलकर।
फिर जो अपनाता है
विश्व-जीवन को, छोड़कर स्व-जीवन,
ऐसा व्यक्ति कभी भी मरता नहीं!
जो वहन करता है भार
इस बोझिल जगत का,
और सहर्ष झेलता है उसे
मर्त्य होकर भी,
ऐसा व्यक्ति कभी भी मरता नहीं!
जोर उस पर मृत्यु का चलता नहीं,
अनुशासित होता नहीं
वह शासनों से,
चिरंतनता में विचरता जो सदा,
ऐसा व्यक्ति कभी भी मरता नहीं!
खोजने पर–
प्रथम तो मिलता ही नहीं वह,
किन्तु जब वह दीखता–
तो चमचमाता है मुकुट
उस मृत्युंजयी के शीश पर।
और वह देता दिखायी–
स्मरण-श्रृंगों की ऊंचाई पर
संसार-स्रोतों की रवानी में,
हर कहीं, यहां तक कि
जन-जन की आंखों के पानी में!
जीवन-प्रकाश से अनुप्राणित
प्रत्येक बीती बात में या चीज में,
देगा दिखायी वह, हर कहीं।
मृत्यु होगी मृत्यु की ही,
अमर होकर रहेगा वह,
क्योंकि ऐसा व्यक्ति
कभी भी मरता नहीं! ❑

(साभार, 'पूर्णाहुति, खंड-4')

इतिहास गवाह है

❑ अशोक मोती

इतिहास गवाह है कि हिन्दुत्ववादी आरएसएस से गांधी का रिश्ता कभी सहज नहीं रहा। लेकिन जब केन्द्र की सरकार में 23 कैबिनेट मंत्रियों में संघ के 17 मंत्रियों के रहने के बावजूद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 11 जून, 2016 को संसद में दिया गया बयान—''आजादी की लड़ाई को जनान्दोलन में तब्दील करने वाले गांधी थे''—दुनिया को आश्चर्य में डाल दिया। जिस गांधी को गोली मारी गयी, जिस पर देश के बंटवारे का आरोप लगाया गया, उसे महानायक बनाकर गुणगान किया जाने लगा। दुनिया इस बात को याद करने लगी कि आरएसएस के संस्थापक हेडगवार गांधी को स्वतंत्रता संग्राम का नायक न मानते हुए भी कांग्रेस की छत्रछाया में एक कांग्रेसी सदस्य के रूप में कार्यरत रहे। दरअसल दुनिया अपने इतिहास को भला कैसे भूल सकती है।

गांधी हिन्दू-मुस्लिम को अपनी दो आंखें कही, संघ ने सदा मुस्लिम को दोयम दर्जा का ही माना। गांधी दोनों में एकता के हिमायती थे और शायद इसीं कारण उन्हें अपनी शहादत देनी पड़ी।

पिछले तीन वर्षों से संघ निदेशित भाजपा के साथ-साथ अन्य दलों ने कई पैंतरे बदले हैं। कभी जाति की हवा तो कभी धर्म की हवा बहायी जा रही है। इस संकीर्णता का अंत हमें दूर दूर तक नजर नहीं आता। आजादी के बाद विगत 69 वर्षों में देश लोकतंत्र की छाया में अनगिनत नासूर झेला है। आज गांधी को जुबान पर लाकर गांधी-प्रेम दिखाने की कोशिश की जा रही है। लेकिन दुनिया आंख खोलकर यथार्थ देख रही है कि जितना तनाव आज भारत-पाकिस्तान सीमा पर है, ऐसा कभी नहीं रहा, इतने जवान भी कभी शहीद नहीं हुए। हर संस्थाएं बंट रही हैं, सिनेमा जगत बंट रहा है, मीडिया बंट रही है, विश्वविद्यालय और शिक्षा जगत तथा युवा बंट रहे हैं। देश-प्रेमी और देश-द्रोही में देश बंट रहा है। भारत में इतनी तीव्र कटुता दुनिया ने कभी नहीं देखी।

फिर ऐसे माहौल में गांधी को मुंह में रखना *'मुंह में राम बगल में छूरी'* जैसा ही तो है। गांधी तो हिन्दुवादियों के लिए सदा नफरत के पात्र रहे और शहीद भगत सिंह और वीर सावरकर के जीवन प्रतिमान को बदलकर भी संगठन खड़ा करते रहे। आज पटेल को आगे करके कभी नेहरू, तो कभी गांधी की ओर अपनी तोप तान रहे हैं। लेकिन गांधी को हाशिये पर लाना किसी के बूते की बात नहीं है, इसलिए उनका नाम लिया जा रहा है और *'गांधी शरणं गच्छामि'* का नारा दिया जा रहा है। गांधी का नाम लेना सत्ताधारी भाजपा या विपक्ष का कांग्रेस या किसी भी दल की मजबूरी है। क्योंकि गांधी जन-जन के मानस में वास करते हैं और दुनिया में भारतवासियों के जीवन मूल्यों के प्रतीक हैं और रहेंगे।

मानवीयता जब गिरती है, तो घृणा गांधी के सीने को छेदने वाली गोली बन जाती है। इसे मानने में किसी को कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। गांधी को गोली लगती है तो वह *'हे राम!'* में बदल जाती है। गांधी सदा प्रेम और क्षमा में विश्वास करता है, उसे जीवमात्र से कोई घृणा है ही नहीं, उसे तो गोली चलाने वाले शैतान से भी घृणा नहीं है और वह हाथ जोड़कर उसे भी क्षमा करता है।

आजादी के बाद जो दंगे-फसाद देश में हो रहे थे, किसी ने गांधी से पूछा था—क्या आप निराश हैं? गांधी ने मुस्कुराते हुए कहा—मैं निराश? उन्होंने कहा, ''मुझे मालूम होता है, चारों ओर चिता जल रही है, मैं अंदर से संपूर्ण मन और तन में ठंड का अनुभव कर रहा हूं।'' कितना बड़ा था गांधी का आत्मविश्वास!

हम सभी जानते हैं कि भारत में जहां कहीं भी दंगे हुए आम नागरिक द्वारा सौहार्द स्थापित होने में कोई देरी नहीं हुई। क्योंकि मानव के व्यवहार का मूल सिद्धांत तो अहिंसा ही है, इसलिए गांधी ने सत्य और अहिंसा को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आधार बनाया था।

ऐसी परिस्थिति में हम सबों को इस बात की गांठ बांध लेनी चाहिए कि जिस महान व्यक्ति का *'जीवन ही संदेश'* रहा है, उसे जो अपने मन-कर्म और वचन से जब तक पूरी निष्ठा के साथ अपने जीवन में ग्रहण नहीं करते, उन्हें गांधी के चरणों में बैठने का ईमानदारीपूर्वक हक नहीं है। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।